“SHAILESH MATIYANI KI KAHANIYON ME PARVATIYA JIVAN SANGHARSH”

(Dissertation submitted to the University Of Hyderabad in partial fulfilment of Degree)

MASTER OF PHILOSOPHY

IN

HINDI

2019

RITU

(17HHHL23)

PROF. ALOK PANDEY

(Supervisor)

Department of Hindi

School of Humanities

University of Hyderabad

Hyderabad-500046

Telangana (INDIA)

“शैलेश मटियानी की कहानियों में पर्वतीय जीवन-संघर्ष”

हैदराबाद विश्वविद्यालय में एम.फिल.(हिंदी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

2019

ऋतु
(17HHHL23)

प्रो. आलोक पाण्डेय
(निर्देशक)

हिंदी विभाग
मानविकी संकाय
हैदराबाद विश्विद्यालय
हैदराबाद - 500046
तेलंगाना (भारत)

DECLARATION

I, **RITU,** hereby declare that the dissertation **SHAILESH MATIYANI KI KAHANIYON ME PARVATIYA JIVAN SANGHARSH [शैलेश मटियानी की कहानियों में पर्वतीय जीवन-संघर्ष]** submitted by me under the guidance and supervision of **PROF. ALOK PANDEY** is a bona-fide research work which is also free from plagiarism. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of 'Master of Philosophy'. I hereby agree that my dissertation can be deposited in Shodhganga/INFLIBNET.

Date: Name: RITU

Place: Reg. No. : 17HHHL23

University of Hyderabad

____

Signature of the Student

CERTIFICATE

This is to certify that the dissertation entitled "**SHAILESH MATIYANI KI KAHANIYON ME PARVATIYA JIVAN SANGHARSH**" **[शैलेश मटियानी की कहानियों में पर्वतीय जीवन-संघर्ष]** submitted by **RITU** bearing Regd. No. **17HHHL23** in partial fulfilment of the requirements for the award of **MASTER OF PHILOSOPHY** in **HINDI** is a bona-fide work carried out by him under my supervision and guidance which is a plagiarism free dissertation.

The dissertation has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Signature of Supervisor
(Prof. ALOK PANDEY)

Head of the Department

Dean of the School

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

प्राक्कथन 03-08

प्रथम अध्याय 09-22

शैलेश मटियानी : व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व

द्वितीय अध्याय 23-52

पर्वतीय जीवनसंघर्ष : विविध आयाम

2.1 पारिवारिक संघर्ष

2.2 आर्थिक:नौकरी, व्यवसाय, कृषि, श्रम

2.3 सामाजिक-सांस्कृतिक:रीति-रिवाज,

2.3.1 रीति-रिवाज

2.3.2 फौल फटकाना

2.3.3 धार्मिक अंधविश्वास

2.4 भौगोलिक संघर्ष:कठिनाईयों का पहाड़

2.4.1 जीवन की बुनियादी जरूरतें

2.4.2 गति में अवरोधक साधनहीनता

2.5 राजनीतिक संघर्ष

तृतीय अध्याय 53-115

शैलेश मटियानी की कहानियों में पर्वतीय जीवन संघर्ष

3.1 चयनित कहानियाँ एवं उनका परिचय

3.2 शैलेश मटियानी की कहानियों में पर्वतीय जीवन संघर्ष:विविध आयाम

3.2.1 पारिवारिकता :प्रेम, संयुक्त परिवार, दाम्पत्य

3.2.2 आर्थिक परिवेश - नौकरी, व्यवसाय, कृषि और श्रम

3.2.3 धार्मिक संघर्ष

3.2.4 राजनीतिक संघर्ष

3.2.5 सामाजिक संघर्ष

3.2.6 भौगोलिक संघर्ष

3.2.7 देश-प्रेम और राष्ट्रीय भावना

3.3 पर्वतीय रचनाकार एवं शैलेश मटियानी की विशिष्टता

उपसंहार **116-121**

संदर्भ ग्रंथ सूची **122-126**

प्राक्कथन

प्राक्कथन

पर्वत अनेक तरह की भौगोलिक विविधताओं से घिरे हुए होते हैं। यह विविधताएँ पर्वतों की सुंदरता को कई गुना बढ़ा देती हैं। वहाँ की भौगोलिक विविधताओं की अगर बात करें तो आँखों के समक्ष देवदारु के ऊँचे वृक्ष जो समस्त पर्वतों को अपनी बाहों में लपेटे हुए हैं, बुरांश के चटक लाल पुष्प सिंदूर की भाँति बर्फ़ की सफ़ेद टीलों के माथे पर सजे हुए होते हैं। कदम-कदम पर वो खट्टे-मीठे सभी जंगली फल जैसे- बेडू का फ़ल, किरमोड़ी जिन्हें चखे बिना यात्री आगे बढ़ ही नहीं पाते। ये पर्वत बहुत ही सुंदर हैं। इनकी सुंदरता ऐसी है कि, किसी को भी अपनी तरफ आकर्षित किये बिना लौटने न दे! एक बार जो इनके मोहपाश में बंध जाएँ उसके लिए अपनी बाहों को छुड़ा पाना फिर संभव कहाँ!

इस प्रकार इन सभी विशिष्टताओं एवं भौगोलिक विविधताओं के बावजूद भी पर्वतीय जीवन किस हद तक दुष्कर है इसका अंदाजा भी लगा पाना कठिन है। पर्वतीय जीवन की इन कठिनाईयों को समझना हैं तो एक बार वहाँ जाने से पहले अपने आँखों से सैलानीपन का चश्मा उतारना होगा, तदोपरांत ही उनके दुख-दर्द को समझ सकते हैं, और समझ सकते हैं कि ये पर्वत उनसे कितने इम्तिहान लेते हैं! उनके जीवन का एक-एक पल कोई न कोई आपदा या अनहोनी के गुजर जाने के डर में ही बीतता है, आँखों में अगले ही पल जीवित न रह पाने का भय इन्हें जीने नहीं देता। यह भौगोलिक विविधताएँ जहाँ एक तरफ इतनी खुबसूरत होती हैं वहीं दूसरी तरफ इनका एक और रूप है जो कि बहुत भयावह है। पर्वतों के इन अनेक पक्षों जिनमें वह सुंदर भी है और इस सुंदरता के साथ-साथ कितना संघर्षपूर्ण भी हैं, जिसे मटियानी ने अपने कथा साहित्य में भली-भांति व्यक्त किया हैं। खासकर उनकी कहानियाँ जहाँ पर्वतीय जीवन के संघर्षों की अनुगूँज हैं। कुमाऊँ के पर्वतों ने शैलेश मटियानी को एक अतिरिक्त लेखकीय संवेदना प्रदान की, जिसे उन्होंने

अपने सम्पूर्ण लेखन का केंद्र बनाया, वहीं दूसरी ओर बंबई ने भी उनको ऐसे अनुभव दिये, जो उनकी रचनाओं मे यत्र-तत्र नज़र आते हैं। यह अतिरिक्त संवेदना, भावुकता और अनुभव लेखक को उसकी ज़मीन का संवेदनशील रचनाकार बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उनकी पर्वतीय परिवेश की कहानियों में एक किस्म का संघर्ष भी है और और कोमलता भी हैं। इसके साथ जीवन के कठोर अनुभवों को संघर्ष के माध्यम से पकड़ने की लालसा भी है। उनके पात्र जहाँ एक तरफ नैतिकताओं और मूल्यों को तोड़ते हैं, वही दूसरी ओर उनके भीतर एक झिझक और आत्मनियंत्रण भी मौजूद है। जैसे- 'लीक' कहानी का 'ठाकुर गोपाल सिंह' अपनी बेटी की शादी छोटी जाति के लड़के से कर देते हैं, लेकिन इससे पहले उसे 'लीक' की सब शाखाओं-उपशाखाओं से अपने भीतर एक जद्दोजहद करनी पड़ती है। यही झिझक 'उसने तो नहीं कहा था' की ठकुरानी के भीतर है। नई राह को पकड़ने की सोच एक लम्बे संघर्ष के बाद ही मिलती है। 'अर्धांगिनी' कहानी इस संघर्ष के साथ-साथ पर्वतीय पृष्ठभूमि और घर-परिवार से सहज और संवेदनात्मक और प्रगाढ़ जुड़ाव का ही प्रतिफलन हैं। मटियानी जी की रचनाओं में कहीं भी उनके अंचल का प्रतिनिधित्व कम नहीं हो पाता। कुमाऊँ के जन जीवन के प्रति उनके मन में एक खास किस्म का स्वदेशीपन भी हैं, जिसे उन्होंने बखूबी निभाया है। किस तरह वहाँ का आम आदमी देसीपन के प्रति घृणा रखते हुए भी मैदानों की तरफ़ रोजी रोटी के लिए दौड़ता है, उसे हम मटियानी जी के कथा साहित्य में देखते हैं। पर्वतीय जीवन की विडम्बना को मटियानी जी ने बड़ी ही निस्संगता के साथ उजागर किया है।

''मटियानी की कहानियाँ जिन्दगी की जटिलताओं, अभाव और भूख का सागा हैं। उनके लगातार बढ़ते हुए अनुभवों को देखकर लगता है कि वे अपने अनुभवों को लगातार जमा करते चले जा रहे हैं। वे जब भी अपना खज़ाना खोलेंगे अनुभवों और उनकी प्रमाणिकताओं का मोती-मणियों की

तरह ढेर लग जायेगा।"[1] अपने अनुभवों में मटियानी जी ने लोक जीवन से बहुत कुछ लिया हैं। मैदानी अंचलों की तुलना में पहाड़ी जीवन हिंदी साहित्य में कम चित्रित हुआ है। कुछ लेखकों को जिनमें मटियानी जी प्रमुख हैं, इस बात का श्रेय है कि उन्होंने पहाड़ी जीवन की अंतरंग पहचान और लय को अपनी रचनाओं में रूपायित किया। मटियानी जी की कहानियों में पहाड़ की वीरानी, विशिष्ट किस्म के संकट, समस्याएं, सहजता, प्रेम, उदासीनता, सुख-दुःख की कर्मण्य दार्शनिकता, प्राकृतिक वैभव, जीवन शैली आदि एक स्तर पर स्थानीय ढंग से उभरते हैं, लेकिन कई बार वे इतने व्यापक हो उठते हैं, मानो वे मनुष्य मात्र के संवेदन संघर्ष हों। कथा-भूमि के केंद्र में रहते हुए मानव-मात्र के मन के विभन्न छोरों को छूना किस तरह संभव हो पाता होगा या अपने विभिन्न जीवनानुभवों को किस तरह कथा भूमि मे अवतरित करना होता होगा, इसकी मिसाल है मटियानी की कहानियाँ।

मटियानी जी पहले लेखक है जिन्होंने कुमाऊँनी जन-जीवन और बोली को प्रमाणिक ढंग से प्रस्तुत किया। 'एक कोप चा दो खारी बिस्कुट', 'दो दुखों का एक सुख', 'इब्बू मलंग' जैसी कितनी ही अमर कहानियाँ लिखी, जिनमे पहाड़ का संघर्ष ओर प्रयोग लगातार मुखरित होता है। 'सुहागिन' पहाड़ी अंचल की एक भिन्न तरह की कहानी है। घोर दरिद्रता से संघर्ष करता हुआ पहाड़ का गरीब आदमी अपनी बहन का विवाह नहीं कर पाता और मृत्युशैया पर लेटा भाई की इच्छापूर्ति के लिए पैंतालिस वर्षीया पद्मावती का विवाह मंगल घाट से करवा दिया जाता है।

'चील' मटियानी जी की एक आत्मकथात्मक कहानी है। इस कहानी में घोर कारुणिक और भयावह भूख की स्थितियां हैं। जीवत रह पाने मात्र के लिए भी कहीं कुछ नहीं मिल पाता तो अंत में मौत ही शरण देती है। दरअसल 'चील' कहानी जीवन के नंगे यथार्थ की एक ऐसी कहानी है जिसमे भीतर ही भीतर बहुत सा रुदन समाया है। इसमें मटियानी जी के स्वयं के संघर्ष के दिनों की

[1] पर्वत से सागर तक की कहानियाँ, क्षितिज शर्मा,जन कथाकार :शैलेश मटियानी ,प्रकाशन विभाग,निदेशक,प्रकाशक विभाग,सूचना और प्रशरण मंत्रालय भारत सरकार पटियाला हाउस,नई दिल्ली 110001,पृष्ठ 86

अनुगूँज है। ऐसे ही मटियानी जी की कहानी 'दो दुखों का एक सुख' मैले कुचले भिखारियों की जिन्दगी की कहानी है, लेकिन इन मैले कुचले इंसानों का प्रेम जिस ऊँचाई तक जाता है उसे मटियानी जी के सिवाय कौन देख सकता था! इस कहानी में 'मिरदुला कानी', 'कमरिया', 'सूरदास' के जिस गहरे दैहिक प्रेम से होकर उदात्तता तक जाता है वह सचमुच विरल है। मटियानी ने अपनी कहानियों में पर्वतीय जीवन संघर्ष के वो तमाम पहलुओं को व्यक्त किया है जिन संघर्षों को वह स्वयं झेल चुके हैं।

इस लघु शोध-प्रबंध को तीन अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय में शैलेश मटियानी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए उनके जीवन के विविध आयामों पर चर्चा की गई हैं, जहाँ उनका जीवन संघर्ष पूर्ण रूप से व्याप्त है। साथ ही शैलेश मटियानी के साहित्यिक सफर का विवरण भी दिया गया हैं। उनके कृतित्व में उनकी साहित्यिक रचनाओं एवं कुछ कृतियों का परिचय संक्षिप्त रूप में दिया गया है।

द्वितीय अध्याय में पर्वतीय जीवन का संघर्ष एवं उसके विविध आयाम बताए गए हैं जिसमें पर्वतीय क्षेत्र कुमाऊँ को आधार बनाया गया है। पर्वतीय लोगों के जीवन संघर्ष के विविध आयाम जैसे- पारिवारिक, आर्थिक, आर्थिक के अंतर्गत व्यवसाय, कृषि, श्रम आदि संघर्ष को समझने का प्रयास किया गया है। इसी प्रकार भौगोलिक के अंतर्गत 'कठिनाईयों का पहाड़', 'जीवन की बुनियादी जरूरतें', 'गति में अवरोधक साधनहीनता' फिर सामाजिक, सांस्कतिक एवं राजनीतिक संघर्ष पर विस्तार से बात की गई हैं, जहाँ सामाजिक संघर्ष के भीतर पर्वतों में फैली प्रथा-कुप्रथा, अंधविश्वास को चिन्हित किया गया है एवं इन मान्यताएँ पर कड़ा प्रहार किया गया है।

तृतीय अध्याय में शैलेश मटियानी की कुछ चुनी हुई कहानियों के संदर्भ में पर्वतीय जीवन संघर्ष के विविध आयामों को समझने का प्रयास किया गया है। साथ ही पहले चुनिंदा कहानियों का परिचय बताया गया है तत्पश्चात 'शैलेश मटियानी की कहानियों में पर्वतीय जीवन संघर्ष' के आयामों पर विस्तृत चर्चा की गई है, जहाँ पारिवारिक जिसमें प्रेम, संयुक्त परिवार एवं दांपत्य,

आर्थिक, धार्मिक, भौगोलिक, राजनीतिक-सामाजिक एवं राष्ट्रीयता को स्पष्ट किया गया है साथ ही अन्य पर्वतीय कथाकारों के रचना-संसार के साथ शैलेश मटियानी के कृतित्व की विशिष्टताएं बताने का प्रयास किया गया है।

ऋतु

प्रथम अध्याय

शैलेश मटियानी : व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व

प्रथम अध्याय

शैलेश मटियानी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

शैलेश मटियानी का जन्म उत्तराखंड की पावन भूमि पर हुआ, जिन्होंने देश का ही नहीं देवभूमि उत्तराखंड का भी नाम गौरवान्वित किया है। यह वही धरती है जहाँ अनेक कवियों और साहित्यकारों ने जन्म लिया, जैसे-सुमित्रानंदन पंत, मनोहर श्याम जोशी, पंकज बिष्ट, शिवानी, इलाचन्द्र जोशी, हिमांशु जोशी, शेखर जोशी, मृणाल पांडे आदि।

"शैलेश मटियानी का जन्म 14 अक्टूबर 1931 में बड़ेछिना नाम के एक छोटे से गाँव में हुआ जो हिमालय की वादियों में अल्मोड़ा से 12 किलोमीटर दूर बसा हुआ है। मटियानी जी के बचपन का नाम रमेश चंद्र मटियानी था।"[2] मटियानी जी के व्यक्तित्व के निर्माण में इनका भौतिक परिवेश विशेष रूप से महत्वपूर्ण रहा। भौतिक परिवेश से हमारा तात्पर्य इनका-घर, परिवार, वातावरण, प्रकृति, पहाड़, नदियाँ आदि हैं। मटियानी जी का जन्म प्रकृति की सुकुमार गोद मे हुआ। जिसके परिणामस्वरूप प्रकृति से मटियानी जी का अत्यंत सहज अनुराग हो गया और अपनी प्रकृति के प्रति इनका यह स्वभाविक प्रेम इनके व्यक्तित्व का एक अभिन्न अंग बन गया जिसे इन्होंने अपने साहित्य में यत्र-तत्र सुंदर रूप में अभिव्यक्ति प्रदान की। स्वयं लेखक ने कहा है "और आज यह भी महसूस कर रहा हूँ कि बाड़ेछिना और आसपास के गाँव के लोगों के पार्वत्य जीवन का, वनांचलों के साथी ग्वालों, ग्वालिनों की चंट-चंटुल संगति का मुझे देखते ही वाँई, वाँई रिरियाने वाली गौरी-भाभी भैसों, बाँ-बाँ रंभाने वाली बिनी रूपसी गायों और मी-मी-मी मिमियाने वाली चनुली भंगिरी-सेतुली बकरियों और उनकी ठेप भंगेरुवा, ठेप-ठेप।"[3] प्रकृति के प्रति अनुराग का यह प्रभाव लेखक के व्यक्तित्व में आत्मसात होकर उनके सभी आँचलिक कहानियों और उपन्यासों में अभिव्यक्त हुआ है। जैसे-"पनार अपनी रौं बही जा रही थी,उसके किनारे पड़े गंग-लोढ़ों से टकरा-

---

[2] शैलेश मटियानी के उपन्यास,परिवेश और रचनासंदर्भ-,हेमंत सोनाले प्रकाशन संस्थान नयी दिल्ली प्रथम संस्करण 2014 09 पृष्ठ

2 शैलेश मटियानी-मेरी तैतीस कहानियाँ आत्माराम ऐंड संस दिल्ली प्रथम संस्करण (भूमिका भाग) पृष्ठ 6,7

टकरा कर फेनिल सर्पिल होती। दूर-दूर विलीन होती जा रही थी और भी"[4] यद्यपि विशिष्ट रचनाकार अपने तात्कालिक भौतिक परिवेश से संतुष्ट नहीं रहता लेकिन वह अपने इस परिवेश से पलायन भी नहीं करता। वह समाज से ही अनुभवों को ग्रहण करके उन्हें संवेदना के मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित करता है तथा एक नए ढंग से रूपायित करना चाहता है। उसकी दृष्टि में साहित्यकार होने की अपेक्षा मानव को मानव के रूप में ही देखना अधिक महत्त्व रखता है। रचनाकार का परिवेशगत स्थितियों के प्रति विरोध मात्र 'विरोध के लिए विरोध' के रूप में नहीं होता और न ही समस्त विद्यमान मूल्यों, संस्कारों और विचारधाराओं का ही विरोध होता है। चूंकि एक विशिष्ट रचनाकार अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक संघर्ष करता रहता है परिणामस्वरूप उसका सम्पूर्ण जीवन संघर्षमय दिखाई देता है और इसीलिए वह जीवनपर्यंत असंतुष्ट भी दिखाई देता है। संसार के सभी महान रचनाकार संघर्ष की इसी स्थिति से होकर गुजरे हैं। रूसी भाषा के महान कथाकार एवं समाजसेवी 'मैक्सिम गोर्की' का जीवन सदैव परिवेशगत यातनाओं, कष्टों और त्रासदियों में ही बीता लेकिन वे लौह स्तम्भ की भांति सदैव अडिग रहे और मानव कल्याण में प्रवृत्त होकर साहित्य सृजन में संलग्न रहे। अपने संत्रासग्रस्त जीवन को गोर्की ने स्वयं व्यक्त किया है "मुझे ऐसा मालूम होता है जैसे मेरे चारों ओर दलिया फबक रहा हो और उसकी सड़ांध धीरे-धीरे मुझे भी अपने चंगुल में दबोच रही हो।"[5]

आधुनिक हिन्दी साहित्य में महाप्राण निराला की स्थिति एक ऐसे ही विशाल वृक्ष की सी है जो कष्टों में निरंतर बढ़ते हुये जीवनपर्यंत आँधी तूफान तथा झंझावतों के थपेड़ों को सहते हुये भी अडिग रहे। अपनी साहित्यिक कृति का अपमान होते देख गाँधी जी से भी टकरा गए। सदा सीना तान कर विरोध करने वाले निराला जी को जीवन में कदम-कदम पर आपदाओं, आर्थिक

---

3 चिट्टीरसैन (शैलेश मटियानी) पृष्ठ 1, आत्माराम ऐंड संस दिल्ली,प्रथम संस्करण

4 मक्सिम गोर्की : जनता के बीच, अनुवादक –नरोत्तम नागर , पृष्ठ 491, विदेशी भाषा प्रकासन गृह, प्रथम संस्करण

विपन्नताओं तथा साहित्यिक जगत के विरोध का इतना सामना करना पड़ा कि अंततः विफलताओं से गुजरते हुये उन्हे कहना पड़ा-

"मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा,

स्तब्ध दग्ध मेरे मरु का तरु"[6]

इसी प्रकार मटियानी जी का जीवन तमाम संघर्षों से गुजरते हुये बीता। बचपन से दुखों का बोझ और संघर्ष का जीवन उन्होंने जिया, एक गरीब परिवार का बालक जिसके आगे पीछे कोई न था, मात्र दसवीं पास कर घर छोड़ने को मजबूर था अपने बेहतर जीवन हेतु। एक नौजवान युवा जिसकी आँखों में महान लेखक बनने का सपना तैर रहा है, लेकिन बिडम्बना यह है कि उस सपने को यथार्थ रूप देने का कोई स्रोत पास में नहीं है कलम की प्रतिभा के अलावा। सच्चाई तो यह है कि बंबई के फुटपाथों में रातें काटनी हैं और पेट भरने के लिए चाय की दुकानों में चाय बेचनी है, और जूठे बर्तन धोने हैं। खेलने कूदने की उम्र में गायें चराना और बूचड़खाने में जानवरों की खाल उतारना ही उनका काम था। मटियानी जी ने निरपराधी होकर भी दंड भोगा। इस पृष्ठभूमि की दो ही परिणति हो सकती थी- या तो वे हत्यारे हो सकते थे या मानवीय संवेदना से लबरेज़ लेखक। इसी बात पर 'उर्बीसचन्द्र मिश्र' लिखते हैं "जिन नारकीय स्थितियों में मटियानी जी रहते आ रहे थे वहाँ उन्हें सुरक्षा भी चाहिए थी और सम्मान भी! इसके लिए उनके पास न साधन थे, न औपचारिक शिक्षा। सब कुछ खुद ही अर्जित करना था। हथियार सिर्फ दो ही थे- एक प्रचंड प्रतिभा एवं कलम और दूसरा अपने खौलते अनुभवों को शब्दों का रूप देकर एक लेखक की दृष्टि।"[7] इस तरह जब अपने कड़वे अनुभवों के साथ मटियानी जी ने कथा-साहित्य में पदार्पण किया तब यह वह दौर था जब हिन्दी कहानी में एक नए तेवर और नयी भंगिमा के साथ एक नयी पीढ़ी सामने आ रही थी।

---

6 http://www.hindi-kavita.com/HindiGeetikaSuryakantTripathiNirala.php

6 शैलेश मटियानी व्यक्तित्व और कृतित्व,उर्बीशचन्द्र मिश्र,साहित्य भंडार, 50 चाहचंद,इलाहबाद ,प्रथम संस्करण 1999,पृष्ठ 64-65

तब इलाहाबाद साहित्यिक केंद्र बन गया था और लगभग सभी कहानीकार 'प्रगतिशील लेखक संघ' के झंडे के नीचे खड़े थे। लेकिन शैलेश मटियानी जैसे महान लेखक और जमीन से जुड़े लेखक की लगातार अनदेखी की गयी, अनदेखी ही नहीं उपेक्षा भी! लेकिन मटियानी जी अपनी कलम की ताकत पर और पाठकों द्वारा प्रसंशा के परिणामस्वरूप निरंतर ऊपर उठते गए।

"मटियानी जी के संघर्ष करने की इस ताकत के पीछे दुखों के साथ सहअस्तित्व स्थापित करने की अदम्य शक्ति है। यह शक्ति संवेदनशील मनुष्य के अंदर उसी परिणाम से जन्म लेती है जिस परिणाम से उनका संघर्ष होता है, उसी रूप में विद्यमान होती हैं जिस रूप में कछुए के अंदर संकट के समय अपने अंगों को पीठ में पीछे छिपा लेने की शक्ति होती है।"[8]

सृजनात्मकता:

प्रत्येक सृजन के मूल में कुछ प्रेरक तत्त्व निहित होते हैं जिनकी प्रेरणा से साहित्यकार साहित्य सृजन करता है। मटियानी जी की रचना के प्रेरक तत्वों में उनकी जन्मजात प्रतिभा, दादी के मुख से सुनी कहानियाँ, अवतार गाथाएँ और प्रकृति की मनमोहक छवियाँ आदि विशेष रूप से प्रेरणादायी रही हैं। लेकिन सर्वाधिक प्रेरणा उन्हें अपने छात्र जीवन काल के दौरान अल्मोड़ा में निवास करते हुए वहाँ के कुछ आभिजात्य लोगों के तिरस्कार से प्राप्त हुई। वे यह सिद्ध करना चाहते थे कि साहित्य सृजन किसी भी जाति विशेष या वर्ग विशेष की बपौती नहीं है।

रचना कर्म का प्रारंभ:

"सन 1950 में शैलेश मटियानी जी नौवी कक्षा में पढ़ते थे, तभी से उन्होंने कवितायें - कहानियाँ लिखना आरंभ किया था।"[9] "सन 1950 में मटियानी जी की दो कहानियाँ 'शांति ही

---

7 शैलेश मटियानी के उपन्यास,परिवेश और रचना-संदर्भ,हेमंत सोनाले प्रकाशन संस्थान नयी दिल्ली प्रथम संस्करण 2014(मटियानी की कहानियाँ : जख्मों की पहचान,गिरिराज किशोर,)

शैलेश मटियानी के उपन्यास 8,परिवेश और रचनासंदर्भ-,हेमंत सोनाले प्रकाशन संस्थान नयी दिल्ली प्रथम संस्करण 2014

जीवन है' तथा 'संघर्ष के क्षण' आचार्य ओमप्रकाश गुप्त द्वारा संपादित 'अमर कहानी' और 'रंगमहल' पत्रिका में प्रकाशित हुई थीं।"[10]

शैलेश मटियानी की कहानियों की विविधता इन संग्रहों में साफ-साफ दिखाई देने लगती है। उनकी दृष्टि समाज के उस नगण्य और अपेक्षित तिरस्कृत वर्ग पर केन्द्रित हो जाती है, जो अभी तक हिन्दी साहित्य में स्थान नहीं पा सका था। इस संदर्भ में क्षितिज शर्मा कहते हैं "सत्ताओं और कथाकारों का ध्यान भी मध्यवर्ग तक ही सीमित था। उच्च वर्ग सत्ता की भागीदारी में अपनी निर्णायक भूमिका पा लेना चाहता था और मध्यवर्ग सुख-सुविधाओं के साथ सत्ताओं में भी अपनी पहुँच बनाने में जुटा था। निम्न वर्ग सत्ता, शक्ति और सामाजिक नियंत्रण के केन्द्रों से कोसों दूर छिटका दिया गया था। वह न समाज का हिस्सा रह गया था, न सत्ताओं की चिंता का। वह व्यवस्थाओं के लिए असुविधाजनक था तो, समाज के लिए अवांछनीय।"[11]

शैलेश मटियानी की पीड़ा का तार सीधा उनके अंचल के साथ जुड़ता है। यद्पि उनके रचना-संसार का व्यापक अनुशीलन करने पर वह किसी एक क्षेत्र से जुड़े हुए नहीं प्रतीत होते। जहाँ एक ओर 'हौलदार', चिट्ठीरैसन', 'मुख सरोवर के हंस', 'एक मूठ सारसो', बेला हुई अबेर', 'गोपुली गफ़ूरन', 'नागवल्लरी', 'आकाश कितना अनंत', आदि में वह उत्तराखंड को अपनी रचना का क्षेत्र चुनते हैं, तो दूसरी ओर 'बोरीवली से बोरीबंदर तक', तथा 'इब्लूमलंग', 'एक कप चा दो खारी बिस्कुट' आदि अनेक रचनाओं में बंबई को और फिर 'भागे हुये लोग', 'मुठभेड़', 'चंद औरतों का शहर' आदि में पूर्वाञ्चल और व्यापक हिन्दी क्षेत्र को।

लक्ष्मण सिंह बटरोही इसी विषय में कहते हैं "उत्तराखंड के कुलीन वर्ग के जिन व्यंग्य बाणों की चुभन से उन्होंने अपनी रचना यात्रा आरंभ की थी, अपने भावी जीवन में उस वर्ग के समानांतर वह

---

9 शैलेश मटियानी के उपन्यास,परिवेश और रचना-संदर्भ,हेमंत सोनाले प्रकाशन संस्थान नयी दिल्ली प्रथम संस्करण 2014 पृष्ठ 13

10 पर्वत से सागर तक की कहानियाँ, क्षितिज शर्मा,जन कथाकार :शैलेश मटियानी ,प्रकाशन विभाग,निदेशक,प्रकाशक विभाग,सूचना और प्रशरण मंत्रालय भारत सरकार पटियाला हाउस,नई दिल्ली 110001,पृष्ठ 86

अपने क्षेत्र के दलित शोषित वर्ग की जो औपचारिक सत्ता स्थापित करना चाहते थे, एक तरह से अपने जीवन की इस लड़ाई में लगातार हारते चले गए। वह हमेशा कहा करते थे जो रचना वह लिखना चाहते थे, वह उनके द्वारा कभी नहीं लिखी जा सकी और उनके जीवन की एक मात्र इच्छा उस रचना को लिखन के लिए अपेक्षित एकांत को प्राप्त करना है। हमेशा उनकी पीड़ा का कारण एक ही होता था..उनकी अपनी रचना की अनुपस्थिति।"[12]

मटियानी जी के जीवन संघर्ष को पढ़ते हुए लगता है कि जिजीविषा व्यक्ति को कठिन से कठिन परिस्थितियों से लड़कर जीना सीखा देती है। निरंतर आर्थिक समस्या से जूझते हुए उनका जीवन अंत तक संघर्षमय रहा। कभी-कभी ऐसा महसूस होता है जिनके पास रोज़गार नहीं होता उन्हें कितनी कठिन परिस्थितियों से होकर गुजरना पड़ता है, हालांकि हिन्दी कथा जगत में अनेक रचनाकारों को इस आर्थिक विषमता से होकर गुजरना पड़ा, पर शैलेश मटियानी को मर्मांतक पीड़ा देने वाली परिस्थितियों से गुजरना पड़ा था। शैलेश मटियानी ने जिस परिवेश में अपने लेखन की शुरुआत की, जिस वातावरण में लिखने की प्रेरणा मिली, वह कुछ अधिक ही कलावादी रहा होगा। अल्मोड़ा नगर के सांस्कृतिक जीवन में उन दिनों एक डेढ़ माह तक चलने वाली क्लासिकल होली की बैठकों और संगीतबद्ध रामलीला का प्रचलन तो था ही, साथ ही यदा-कदा सुमित्रानंदन पंत, इलाचन्द्र जोशी इत्यादि मूर्धन्य रचनाकारों की उपस्थिति वातावरण में अपना विशेष प्रभाव छोड़ जाती थी। मटियानी जी के लेखन की शुरुआत अधिकांश लेखकों की भांति कविताओं से ही हुई थी, उनकी कविताओं में तात्कालिक प्रभाव देखा जा सकता है।

अपनी रचना प्रक्रिया के विषय में मटियानी जी ने स्वयं लिखा है "प्रारम्भ से ही मेरी रचना-प्रक्रिया बहुधा उस स्थिति और दायरे तक सीमित रही है, जिसका मैं प्रत्यक्ष दृष्टा और भोक्ता हूँ। जिस मिट्टी, संस्कृति और जिन लोगों के साथ मेरा संपर्क रहा, उन्हीं तक मेरी लेखनी भी सीमित रही है। यद्यपि मेरा प्रत्यक्ष देखा भोगा ही उतना अधिक हैं कि मुझे अभी सदियों तक अतिरिक्त सामग्री

---

[12] किसी एक आदमी कि विक्षिप्तता नहीं थी वह,बटरोही,जन कथाकार शैलेश मटियानी पृष्ठ 50-49

शोधने की परेशानी नहीं उठानी पड़ेगी।"[13] उनके रचनाकर्म में उनकी संवेदना को महसूस किया जा सकता है।

शैलेश मटियानी का रचना कार्य:

शैलेश मटियानी ने अपने रचना कार्य का प्रारम्भ कविता से किया था। वे अपने विधार्थी जीवन से ही कविता लिखने लगे थे कवि के रूप में मटियानी जी द्वारा रचित प्रथम कविता का शीर्षक "शिथिल है साधना मेरी"[14] एक अन्य कविता कुमाऊँनी भाषा में 'शिखरों के स्वर' पत्रिका में "शिव हरी कैलाश बाटी"[15]

लोक कथाएँ :

शैलेश मटियानी की लोककथाओं के संग्रह निम्न हैं-

अल्मोड़ा की लोककथाएँ

बरमण्डल की लोककथाएँ

चंपावत की लोक कथाएँ

नैनीताल की लोककथाएँ

तराई प्रदेश की लोककथाएँ

बाल साहित्य :

राजमानी और गौरय्या रानी

कावेरी और कालु

रुंझुना दीदी रुंझुना

---

12 मेरी तैतीस कहानियाँ ,शैलेश मटियानी (भूमिका से)आत्माराम ऐंड संस दिल्ली प्रकाशन,प्रथम संस्करण पृष्ठ 28

13 शैलेश मटियानी : व्यक्तित्व और कृतित्व,उर्बिश चंद्र मिश्र,साहित्य भंडार 50 चाहचंद,इलाहबाद ,प्रथम संस्करण 1999 पृष्ठ 89

14 शैलेश मटियानी : व्यक्तित्व और कृतित्व,उर्बिश चंद्र मिश्र,साहित्य भंडार, 50 चाहचंद,इलाहबाद ,प्रथम संस्करण 1999 पृष्ठ 89

सदानंद निरानंद

चुहिया का दूल्हा

भाग गया भूत

खांसी को फांसी

कहानी संग्रह :

शैलेश मटियानी के कहानी संग्रहों का कालक्रमानुसार संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया गया है-

मेरी तैतीस कहानियाँ (1961)

दो दुखों का एक दुख (1966)

सुहागिन तथा अन्य कहानियाँ (1967)

दूसरों के लिए (1967)

तीसरा सुख (1972)

मेरी प्रिय कहानियाँ (1972)

जंगल में मंगल (1975)

महाभोज (1975)

अहिंसा तथा अन्य कहानियाँ (1975)

नाच जमूरे नाच (1975)

भेडें तथा गड़ेरिये (1975)

दो दुखों का एक सुख: यह मटियानी जी का सुप्रसिद्ध कहानी संग्रह है। इसमें लेखक ने मनोविश्लेषण प्रधान कहानियों के साथ आधुनिक नारी के विचारों को भी स्पष्ट किया है। विशेष रूप से यह संग्रह मानवीय जीवन की नियति और असंगतियों के पहचान की सशक्त अभिव्यक्ति है।

सुहागिन तथा अन्य कहानियाँ : इसमें सामाजिक परिवेश के यथार्थ का चित्रण किया गया है। यह कहानी संग्रह 1967 में विकल्प प्रकाशन, इलाहबाद से प्रकाशित हुआ। इसमे नारी की आस्थापरक मनोदशा का सुंदर चित्रण किया गया है। इस संग्रह की पहली कहानी 'कठफोड़वा' बड़ी ही रोचक और मर्मस्पर्शी है।

तीसरा सुख : इस संग्रह में पर्वतीय अंचल के जनजीवन का सुंदर और यथार्थ चित्रण किया गया है। इस संग्रह की सबसे महत्वपूर्ण कहानी 'तीसरा सुख' है, जिसमें नारी मन के भीतर उठने वाले तूफान को अत्यंत मार्मिक रूप से चित्रित किया गया है।

मेरी प्रिय कहानियाँ : इस संग्रह में गाँवों की प्रचलित परम्पराओं रीति-रिवाजों और अंधविश्वासों का चित्रण किया गया है। इस संग्रह में कुल नौ कहानियाँ संग्रहीत की गयी है। इस संग्रह की प्रसिद्ध कहानी 'ईब्बूमलंग' के माध्यम से मटियानी जी ने एक ऐसे चरित्र को प्रस्तुत किया है, जिसकी विडम्बनाएं पाठक कभी नहीं भूल सकता।

पापमुक्ति तथा अन्य कहानियाँ : यह संग्रह 1973 में आयु प्रकाशन, इलाहबाद से प्रकाशित हुआ है। इसमें मानवीय जीवन का बदलता हुआ परिदृश्य चित्रित किया गया है। इस संग्रह में 'नाबालिग' कहानी नारी और पुरुष के आकर्षण और उनके संबंधों को लेकर लिखी गयी है।

भेडें और गड़ेरिये : यह शैलेश मटियानी जी का चर्चित कहानी संग्रह है। इसकी पहली कहानी 'भेडें और गड़ेरिये' में भारतीय जनता की यथास्थिति का चित्रण कर स्वाधीनता संग्राम के पाखंडी नेताओं ने आज़ादी के नाम पर किस प्रकार अपने स्वार्थों को सिद्ध किया इस पर कटु व्यंग्य किया है। कहानी संग्रह की दूसरी कहानी 'वापसी' में गाँव के राजनीतिक और सामाजिक स्थिति का याथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

मेरी तैंतीस कहानियाँ : शैलेश मटियानी जी का यह कहानी संग्रह 1961 में आत्माराम ऐंड संस, दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में लेखक ने मनुष्य के बहुरूपी जीवन के विविध

आयामों पर प्रकाश डाला है। दार्शनिकता से युक्त ऐतिहासिक कहानी, व्यंग्य प्रधान कहानी, सामाजिक कहानी, चरित्रप्रधान कहानी, आदर्शवाद कहानी आदि विषयों को लेकर शैलेश मटियानी ने इस संग्रह में कहानियाँ लिखी हैं।

शैलेश मटियानी के उपन्यास :

बोरीवली से बोरिबंदर तक : मुंबई महानगर के फुटपाथों पर नारकीय जीवन व्यतीत करते मछुवारों के जीवन का यथार्थ चित्रण है। इस उपन्यास में बंबई के दो स्टेशनों- 'बोरिवली से बोरिबंदर तक' की कथा है। इन दो स्टेशनों के बीच रहकर शराब बेचने और जेब काटने के काम करने वाले लोगों की ज़िंदगी को दर्शाया गया है। इस उपन्यास की एक मुख्य समस्या वेश्यावृत्ति है। देश के बहुत सारे लोग पहाड़ों की अनेक लड़कियों को बहला कर शहरों के कोठों तक पहुँचा देते हैं।

कबूतरखाना : इसका प्रकाशन 1960 में हुआ। इस उपन्यास मे महानगरीय जीवन में अर्थाभाव और साथ ही में वेश्या जीवन की समस्या को चित्रित किया गया है। 'कबूतरखाना' सांकेतिक अर्थ को मटियानी जी ने इस उपन्यास में मुंबई महानगरीय जीवन के शोषित और निम्नवर्गीय पात्रों के जीवन का यर्थाथ चित्रण किया है। ये लोग पंख नोचे गए कबूतर की तरह लावारिस और बदनसीबी में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ये लोग इमानदारी से नहीं जी सकते, जीने के लिए इन्हें घिनौने और अनैतिक कार्य करने ही पड़ते है। इसी प्रकार विवशता से कोठों पर जीवन बसर करने वाली वेश्याओं का चित्रण भी है। जब तक उनके शरीर में आकर्षण रहता है तब तक वे देह व्यापार करती हैं और अंत में अनेक बीमारियों से इनका अंत हो जाता है।

हौलदार : इस उपन्यास में पर्वतीय अंचल के जीवन का चित्रण किया गया है। यह आंचलिक पृष्ठभूमि पर शैलेश मटियानी का प्रथम उपन्यास है। यह उपन्यास अल्मोड़ा के बाड़ेछिना गाँव की

पृष्ठभूमि पर लिखा गया है जो मटियानी जी की भी जन्मभूमि है। इसमे डूंगर नामक एक नवयुवक की कथा है, जो समाज में अपना प्रभाव जमाने के लिए हौलदार बनना चाहता है परंतु प्रशिक्षण काल में ही अपनी ही गोली से लंगड़ा होकर घर लौट आता है। शारीरिक अक्षमता के कारण उसकी इच्छाएं कुंठा में बदल जाती है। इसमे उसकी हीन भावना जनित क्रिया-प्रतिक्रियाओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया गया है।

मुख सरोवर के हंस : इस उपन्यास में लोककथा के माध्यम से आंचलिक परिवेश के सांस्कृतिक जीवन का चित्रण किया गया है। यह लोककथा एक वीरगाथा है। इसमे चंपावत गढ़ी के राजा कालीचंद की कथा प्रस्तुत की गयी है। उन्होंने संतान सुख प्राप्ति के लिए रानी रूपाली के साथ आठवाँ विवाह किया था।

चंद औरतों का शहर : विजातीय विवाह की समस्या को इस उपन्यास में चित्रित किया गया है। यह एक प्रकार से शहरी औरतों का उपन्यास है। ये औरतें आधुनिक बनने की कतार में लगी हुई हैं। इनकी भाषा सीधी-सहज कम, बनावटी अधिक हो गयी है।

मुठभेड़ : राजनीतिक और सरकारी तंत्र की संवेदनशून्यता को इसमें दर्शाया गया है। यह उपन्यास पत्रकार और पुलिस के परस्पर संबंधों और विरोधों को ही नहीं, उनके शक्ति-संतुलन, दयनीयता और लाचारी को भी एक साथ इसमें प्रस्तुत करता है। उपन्यास के ज़रिए समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार को मिटाने के लिए लेखक ने प्रयास किया है। साथ ही व्यवस्था को बदलने की मांग भी वह करता है।

गोपुली गफ़ूरन : यह एक नायिका प्रधान उपन्यास है। गोपुली से गफ़ूरन बनने तक की कथा और व्यथा को इसमें दर्शाया गया है। गोपुली एक आश्रयहीन, जाति विपन्न औरत है। उसकी अदम्य साहस, संघर्ष की क्षमता, आत्मविश्वास और जिजीविषा के बावजूद नारी सुलभ कमजोरियाँ भी है, फिर भी वह अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत है। हिन्दू स्त्रियों के धर्म-परिवर्तन का एक नया आयाम इस उपन्यास में परिलक्षित होता है।

बावन नदियों का संगम : इस उपन्यास की कथा संसार में देह व्यापार करने वाली वेश्याएँ, धंधा चलाने वाली बूढ़ी वेश्याएँ और इस धंधे के दलाल भी शामिल है। पाखंडी और ढोंगी नेताओं का भी पर्दाफाश किया गया है।

एक मूठ सरसों : इस उपन्यास में कुमायूं प्रदेश की स्त्रियों के करूण-दारुण जीवन की व्यथा का चित्रण है। इसमें सामाजिक कलंक से अभिशप्त नारी के मन की व्यथा एवं उसके दयनीय जीवन का चित्र उपस्थित है।

शैलेश मटियानी का साहित्यिक पत्रकारिता में योगदान :

विकल्प :

पत्रकारिता के क्षेत्र में शैलेश मटियानी द्वारा संपादित अर्धवार्षिक साहित्यिक पत्रिका 'विकल्प' को हिन्दी साहित्य में एक नए युग को जोड़ने वाले प्रयास के रूप में देखा जा सकता है। सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने इस विषय में लिखा है "विकल्प आप निसंदेह नए आदर्शों को सामने रखकर निकाल रहे हैं,इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि यह नयी साहित्यक पीढ़ी का पथ-प्रदर्शन करेगा।"[16]

जनपक्ष :

जनपक्ष का पहला अंक 1977 मई माह में प्रकाशित हुआ था। "जनपक्ष मटियानी जी द्वारा संपादित दूसरी पत्रिका है। इस पत्रिका में मटियानी जी ने देश में आपातकालीन परिस्थिति के समय बदलते हुये राजनीतिक वातावरण में कुछ व्यवस्था लोलुप लेखकों के विचारों का खुल्लमखुल्ला विरोध किया है। इतना ही नहीं इस पत्रिका में मटियानी जी ने निर्भीक होकर

---

15 शैलेश मटियानी के उपन्यास परिवेश और रचना-संदर्भ,डॉ हेमंत सोनाले,प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली 110002, प्रथम संस्करण 2014, पृष्ठ 34

साहित्यकारों द्वारा आँख मुंदकर अनुमोदन करने की प्रवृत्ति की कटु आलोचना की तथा लेखकीय स्वातंत्र्य को बनाए रखने में अपना पूर्ण योगदान भी दिया है।"[17]

प्रसारण:

शैलेश मटियानी की पुस्तक 'खांसी के फांसी' के एकांकी ध्वनिरूपकों का आकाशवाणी के ज़रिये प्रकासण हो चुका है।

बी.बी.सी लंदन द्वारा 'दो दुखों का एक सुख' कहानी का नाट्य रूपान्तरण आकाशवाणी से प्रसारित हो चुका है।

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा अभिमंच समागार में प्रस्तुत कथा कोलाज़ में 'मैमूद' कहानी का मंचन हो चुका है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि मटियानी जी हिन्दी कथा साहित्य में एक ऐसे रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठित हुए जिन्होंने एक सामान्य व्यक्ति को अपनी रचनाओं के मूल केंद्र में रखा और उसी के माध्यम से तामम समस्याओं को लेकर रचना कार्य पूर्ण किया। मटियानी जी के चले जाने के बाद हिन्दी कथा जगत ने अपना एक अनमोल रत्न खो दिया लेकिन उनका जीवन और उनकी रचनात्मकता आगामी पीढ़ी के लिए प्रेरणादायी सिद्ध होगी। तमाम संघर्षों और यातनाओं के बावजूद भी वो अंत तक वे रचना कार्य में संलग्न रहे।

16 शैलेश मटियानी के उपन्यास परिवेश और रचना-संदर्भ,डॉ हेमंत सोनाले,प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली 110002, प्रथम संस्करण 2014, पृष्ठ 35

द्वितीय अध्याय

2. पर्वतीय जीवनसंघर्ष: विविध आयाम

2.1 पारिवारिक संघर्ष

2.2 आर्थिक:नौकरी, व्यवसाय, कृषि, श्रम

2.3 सामाजिक-सांस्कृतिक:रीति-रिवाज, प्रथा-कुप्रथा, मान्यताएं, अंधविश्वास

2.3.1 रीति-रिवाज

2.3.2 फौल फटकाना

2.3.3 धार्मिक अंधविश्वास

2.4 भौगोलिक संघर्ष:कठिनाईयों का पहाड़

2.4.1 जीवन की बुनियादी जरूरतें

2.4.2 गति में अवरोधक साधनहीनता

2.5 राजनीतिक संघर्ष

द्वितीय अध्याय

पर्वतीय जीवन-संघर्ष : विविध आयाम

2.1 पारिवारिक संघर्ष

समाज की प्रारंभिक इकाई परिवार है। मनुष्य का जन्म, विकास और संस्कृतिकरण परिवार से ही आरंभ होता है, और उसी परिवार के प्रचार से समस्त राष्ट्र का निर्माण होता है। परिवार के बिना समाज का अस्तित्व और निरंतरता संभव नहीं है। मनुष्य मरता है, परंतु परिवार की सहायता से मानव जाति अमर हो गई। पर्वतीय समाज में अमरता का सूचक, यह परिवार अनेक दुर्लभताओं से भरा हुआ है। संपत्ति को लेकर भाई-भाई, पिता-पुत्र, माता-बेटी आदि संबंधों में संघर्ष, ईश्र्या और द्वैष पर्याप्त मात्रा में बढ़ रहा है। वैयक्तिक स्वार्थ व हितों ने त्याग, आदर्श व सहनशीलता को समाप्त कर दिया है। आपसी संबंधों में कटुता बढ़ती जा रही है। पर्वतीय क्षेत्रों में पारिवारिक विघटन का मुख्य कारण आर्थिक दबाव है। महंगाई से सर्वसाधारण का जीना मुश्किल होता जा रहा है, तो संयुक्त परिवार के आश्रितों की सहायता कैसे हो सकती है? शहरीकरण, मशीनीकरण और औद्योगिकीकरण ने संयुक्त परिवार को ग्रस लिया है। आधुनिक जीवन में व्यक्तिवाद का प्रभाव पड़ा और पुराने पारिवारिक मूल्य टूटने लगे। इन मूल्यों के टूटन को पर्वतीय जीवन में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। परिवार देवदारू की वृक्ष की तरह होता है, लेकिन वह वृक्ष लंबे समय तक बना रहे यह संभव नहीं रह गया। गांव के संयुक्त परिवार धीरे-धीरे विघटित होते जा रहे हैं। प्रथम महायुद्ध के समय से ही कुमाऊँ के ग्रामांचल नई सभ्यता से जुड़ने लगे। ईसाई मिसनरीज के धर्म प्रचार एवं आर्थिक प्रलोभनों में आकर कुमाऊँ के ग्रामांचलों में भी धर्म परिवर्तन ज़ोर-शोर से हो रहा है। अब धीरे-धीरे ग्रामांचलों में नगरीय सभ्यता के प्रति आकर्षण बढ़ता जा रहा है और वे गाँव के रहन-सहन की तुलना में शहरी सभ्यता की प्रशंसा करते हैं।

पर्वतीय जीवन अपने मूल में मुख्य धाराई मैदानी क्षेत्र से सर्वथा भिन्न है। पर्वतीय जीवन स्वरूप एवं उसके पारिवारिक समस्या के विविध आयाम सर्वथा भिन्न है क्योंकि पर्वतीय संस्कृति

तुलनात्मक रूप से प्रकृति के अधिक समीप है। परिवार समाज की न्यूनतम इकाई है, जिसकी संरचना मात्र व्यक्तियों के सामूहिक सान्निध्य से पूरी नहीं होती। इसके मूल में प्रेम और दांपत्य का वह सहज समीकरण है, जो परिवार को टिकाए रखता है। सभ्यता के विषैले प्रभाव से पृथक कुमाऊँ का पारिवारिक स्वरूप मुख्य रूप से संयुक्त है। प्राकृतिक निश्चलता इनके पारिवारिक व्यवस्था में भी दृष्टिगोचर होती है। प्राकृतिक सह-अस्तित्व ने इन्हें संयुक्त रूप से सामाजिक जीवन बिताने के लिए प्रेरित किया। अतः भारतीय संस्कृति के प्राण तत्त्व संयुक्त परिवार व्यवस्था को पहाड़ी जन-मानस ने अब तक बचाए रखने की जद्दोजहद की है। प्रेम सामूहिक जीवन निर्वहन का प्राण तत्त्व है। इसी प्राण तत्व के कारण ही कुमाऊँ का पहाड़ी जीवन पारिवारिक टूटन से अब तक अनभिज्ञ रहा है, किन्तु जैसे-जैसे मैदानी क्षेत्र से इस प्रदेश की आवाजाही बढ़ी है इसकी मूल पारिवारिक संरचना भी प्रभावित हुई है। पर्वत अपनी निश्छलता और निस्वार्थता के लिए जाने जाते हैं, किन्तु इनकी जड़ों में भूमंडलीकरण के दीमक ने सेंध लगा दी है, परिणामस्वरूप पर्वतीय पारिवारिक जीवन संक्रमणकालीन दौर से गुज़र रहा है।

नवंबर 2002 को उत्तर प्रदेश से अलग होकर उत्तराखंड अस्तित्व में आया। अपनी जीवनशैली, संरचना, संस्कृति एवं कई अन्य क्षेत्र में हिन्दी भाषी (उत्तर प्रदेश) राज्य से भी न होने के कारण ये पहाड़ सर्वथा मुख्यधाराई समाज की उपेक्षा के पात्र ही रहे हैं। अतः नए राज्य के अस्तित्व ने इसकी पारिवारिक, समाजार्थिक स्थिति को किस हद तक प्रभावित किया, यह विचारणीय प्रश्न हैं। अखंड उत्तर प्रदेश एवं नवनिर्मित उत्तराखंड की राजनैतिक उठापटक ने इसके समाज आर्थिक परिस्थितियों को प्रभावित किया है, जिसके परिणाम स्वरूप यहाँ की पारिवारिक व्यवस्था भी चरमराई है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि पर्वत सदैव विकास की परिधि पर ही रहे हैं। अतः विकास के क्रम में बाज़ार के भँवर में फंसकर यहाँ की पारिवारिक संरचना प्रभावित हो रही है। भारतीय पारिवारिक व्यवस्था अपने मूल में संयुक्त है, एकल पारिवारिक व्यवस्था भूमंडलीकरण, उपभोक्तावाद एवं बाज़ारवादी सभ्यता की देन है। उत्तर आधुनिकता ने जिस अस्तित्ववाद की शह

में पश्चिम के सामाजिक टूटन की पीड़ा झेली वही विकासवादी सिद्धांत पर्वतीय जीवन शैली को तहस-नहस कर रही है। पहाड़ी संयुक्त परिवार भी अब मुख्यधारा समाज की सोहबत में विखंडन की शिकार हो रही है। अर्थाभाव में पारिवारिक प्रेम तत्त्व उत्तरोत्तर खींझ, झुँझलाहट एवं अलगाव में फलित हो रही है। संयुक्त परिवार में पति-पत्नी, बच्चे एवं बड़े-बूढ़ों का सह-अस्तित्व अब ख़तरे में पड़ चुका है। जीविकोपार्जन की तलाश में मैदानी क्षेत्र में पलायन कर रहे पहाड़ी जन-मानस पारिवारिक टूटन एवं बिखराव का सामना कर रहे हैं। परिवार का युवा सदस्य रोज़गार की तलाश में समीपवर्ती मैदानी प्रदेश की ओर उन्मुख हो रहा है। अपनी माटी से पलायन का परिणाम पारिवारिक संरचना से पलायन में तब्दील हो रही है। पलायन के इस क्रम में उत्तराखंड अब बूढ़ा राज्य होता दिख रहा है। क्योंकि पर्वतीय युवा झुंड के झुंड पर्वतों से मैदानी क्षेत्र की ओर पलायन कर रहे हैं, परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार के अवशेष के रूप में वृद्ध सदस्य ही रह गए हैं। इस पलायन को रोकने के लिए सरकारी उपाय उतने कारगर सिद्ध नहीं हो रहे हैं। यह पलायन कुमाऊँ के प्राण तत्त्व पर तलवार की भाँति लटक रही है। पहाड़ चाहे पूर्वोत्तर भारत के हो या हिमाचल, उत्तराखंड के इनके बीच कुछ समान्य तत्त्व है। पर्वतीय समाज समतामूलक समाज होता है जिसमें पितृसत्तात्मक व्यवस्था से इतर स्त्री-पुरुष के सह-अस्तित्व की अवधारणा को महत्ता दी जाती है। पारिवारिक धरातल पर संयुक्त परिवार के भरण पोषण हेतु पति-पत्नी मिल कर अर्थोपार्जन करते हैं। पति-पत्नी साथ मिलकर खेती करते हैं, साथ मिलकर फ़सल बोते हैं। पहाड़ी जन-जीवन अपने दैनंदिन कार्यकलाप में भी प्रेम तत्व की छाप छोड़ जाता है। लोक गीत गुनगुनाते हुए गाय, बकरी, भैंस एवं अन्य जानवरों को चराते हैं। जानवर उनके लिए परिवार के सदस्य के रूप में होते हैं, वे उनके नामकरण भी इंसानों के नाम के तर्ज़ पर ही करते हैं। हिंदी कथाकारों ने पारिवारिक संदर्भ में पशुओं की भूमिका को केंद्र में रखकर कुछेक कहानियाँ लिखी हैं जो, पर्वतीय पारिवारिक जीवन के प्राण तत्त्व प्रेम को उद्घाटित करता है। कथाकार 'शैलेश मटियानी' ने पर्वतीय जीवन के इस प्रसंग को मैमूद कहानी में चित्रित किया है। 'मैमूद' एक बकरी है जिसे परिवार के मुख्य सदस्य के

रूप में रखा जाता है किन्तु अंत में जब अतिथि सत्कार हेतु उसकी बलि दी जाती है तब पारिवारिक रुदन पहाड़ी पारिवारिक संरचना में जानवरों के अस्तित्व को स्वीकृति देती है। किंतु पहाड़ी जीवन का दूसरा पक्ष यह भी है। जहाँ सब कुछ ठीक नहीं है। "जीवन जितना सरल दिखता है, उतना है नहीं। उल्लास है तो आँसू भी है। होंठों पर हंसी है तो हृदयविदारक कसक भी। पल-पल ख़ुशी है, आनंद है तो विरह की हवा भी उससे कम तीखी नहीं है। हरी-भरी धरती, खुला आसमान, ताज़ा हवा-ताज़ा स्वच्छ पानी के गीत हैं, तो भूख-प्यास से तड़पते बचपन के लिए थपकी देकर सुलाने को मजबूर करने वाली लोरियाँ भी है। जीवन में जितनी ख़ुशी है, उतने उदासी भी। जहाँ भगवान के प्रति आस्था है वहीं उतनी ही रूढ़िग्रस्त जीवन में भूत-प्रेत छायाएँ, जादू-टोना भी। क्या कुछ नहीं है। ज़रा गंभीरता से सोचें और इनसे नज़दीक से जुड़ने का प्रयास करें तो पहली दृष्टि में ही यहाँ के रीति-रिवाज़, यहाँ की प्रथाएँ, परंपराएँ अपने आप में विचित्र लगते हैं। उनकी बोली-भाषा ही भिन्न नहीं, मानवीय संवेदनाओं के स्तर पर भी इनकी मान्यताएं, इनके सरोकार और इनकी सोच, संवेदनाएं भी अलग हैं उनका सब कुछ अलग है। यहाँ तक कि उनके आदर्श भी निराले हैं।"[18] पर्वतीय जीवन धनाभाव में खेती और पशुपालन छोड़ शहरोन्मुख हो रहा है, अतः पलायन के इस क्रम में दाम्पत्य का पहिया भी लड़खड़ा रहा है। गाँव का युवा शहर में कहीं भी, कैसा भी कार्य करने पर विवश है । ठीक इसके समानांतर पर्वतीय स्त्रियाँ पलायन की सामंती पीड़ा झेल रही है। मैदानी क्षेत्र में पलायित स्त्रियाँ पति के समान चाय की दुकान पर बर्तन नहीं माँज सकती क्योंकि मैदानी क्षेत्र में बर्तन मांजती स्त्री कहीं से भी सुरक्षित नहीं है। अतः समाज में लगातार गिरती इन स्त्रियों की भागीदारी उन्हें पितृसत्तात्मक समाज में हीनता बोध कराती है। क्रमशः इन स्त्रियों की सामाजिक भागीदारी कम होती चली जा रही है और वह भी मुख्यधाराई स्त्रियों के समान सामाजिक भागीदारी में नगण्य समझी जाने लगी है। इन घटनाओं का सीधा-सीधा प्रभाव दाम्पत्य जीवन पर पड़ता है। स्त्री-पुरुष समानता के सिद्धांत पर आधारित पहाड़ी समाज

[18] कुमाऊँ की लोक कथाएँ, हरिसुमन बिष्ट, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, दूसरी आवृत्ती 2014, पृष्ठ - 08

अर्थोपार्जन एवं सामाजिक भागीदारी में समानता का परिचायक है। जब खेतों में पति-पत्नी साथ-साथ पशु चराने, घास काटने या फ़सल बोने जाते हैं तो, यह मात्र आवश्यकता के तहत नहीं अपितु श्रम की समानता व संबंधों की समानता के सिद्धांत पर भी कार्य करते हैं। पर्वतीय समाज पलायन के साथ-साथ पर्यटन के हस्तक्षेप से भी अपने मूल से हटता चला जा रहा है। पर्यटन संबंधी व्यवसाय एवं पर्यटकों की आवाजाही ने भी यहाँ के सामाजिक संरचना को प्रभावित किया है। पर्वतीय जीवन पारिस्थितिकी तंत्र एवं जैव-विविधता के कारण प्राणी मात्र ही नहीं अपितु पशुओं से भी मानव समान व्यवहार करते हैं। पर्वतीय परिवार खेती-बाड़ी एवं पशुपालन के क्रम में स्वयं को अपने सांस्कृतिक एवं पारिवारिक व्यवस्था के नज़दीक पाते हैं। उनकी पारिवारिक संरचना तब सामूहिकता के निर्वहन में सक्षम रहती है किंतु, जैसे ही अर्थ प्राप्ति के प्राकृतिक संसाधनों पर सभ्यता की मार पड़ती है, संसाधनों के अभाव में पहाड़ी जन-मानस मैदान की ओर पलायन के लिए विवश होता चला जाता है और पर्वतीय पारिवारिक-सामाजिक एवं दाम्पत्य संतुलन बिगड़ने लगता है। प्रकृति को भौतिकता स्थानांतरित करने लगती है और प्रेम को बौद्धिकता निगलने लगती है, तभी पारिवारिक टूटन, बिखराव एवं संत्रास का दौर आरंभ हो जाता है और पहाड़ी जन-मानस भी सभ्यता के विषैले प्रभाव की चपेट में आ जाते हैं। प्रेम करना पर्वतीय समाज में इतना आसान नहीं है। प्रेम होता तो है, लेकिन समाज की स्वीकृति उन दोनों प्रेमी-प्रेमिका को नहीं मिल पाती, जिसके परिणामस्वरूप वे पलायन करने हेतु मजबूर हो जाते हैं और जब ये जोड़े दूसरी जगहों में जाते हैं तो अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ हो जाते हैं और धीरे-धीरे इनका प्रेम समाप्त होने लगता है । इस प्रकार प्रेम तो होता है लेकिन चिर-स्थायी नहीं बन पाता। आर्थिक तंगी, वासनापूर्ति आदि से जल्दी ही प्रेम कटुता, टकराहट में बदल जाता है। मधुरता की जगह कड़वाहट में बदल जाती है।

2.2 आर्थिक : नौकरी, व्यवसाय, कृषि, श्रम

नौकरी की तलाश में आज पहाड़ का एक-एक व्यक्ति शहर की ओर रुख कर रहा है। वह यह सोच कर दिल्ली या मुंबई आता है, कि शायद उसे कोई ढंग कि नौकरी मिल जाये और उसकी आर्थिक स्थिति मजबूत हो लेकिन महानगरों में आने के बाद उसकी यह सोच बिखर-सी जाती है और वह अपना सारा जीवन इन महानगरों के फुटपाथों पर ही व्यतीत करता है। इस महानगर के परिवेश में न जाने ऐसे कितने लोग हैं जो आज भी अपनी ज़िंदगी फुटपाथों पर बिता रहे हैं। इनके दिलों में यह आशा सदैव रहती है कि उन्हें एक न एक दिन अपना खुद का घर इस महानगर में जरूर मिलेगा। न जाने कितने वर्षों से वे फुटपाथों पर सजाएँ हुये सपनों को फुटपाथों पर ही सोकर देख रहे हैं। इन फुटपाथों पर स्वप्न देखनेवाले लोगों की यह पीड़ामय कहानी है। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में किसी देश का सुदृढ़ वह शक्तिशाली होना उसके आर्थिक विकास पर निर्भर करता है। किसी भी देश का सुनियोजित एवं संतुलित आर्थिक विकास तभी संभव है जब उद्योगों के विकास हेतु आवश्यक वातावरण का निर्माण किया जाए। उत्तराखंड एक पर्वतीय राज्य हैं। उत्तराखंड राज्य, देश के उन भागों में से है, जो प्राकृतिक संसाधनों से संपन्न होते हुए भी आर्थिक रूप से पिछड़े हैं। इस हिमालय राज्य के पिछड़ेपन का मुख्य कारण विषम भौगोलिक परिस्थितियाँ एवं प्रशासनिक अपेक्षाएँ है। यहाँ पर भौगोलिक विषमताएँ पाई जाती है, जो कि राज्य के समन्वित विकास में बाधक है। राज्य निर्माण के पश्चात राज्य के औद्योगिक विकास में उल्लेखनीय प्रगति हुई है, परंतु यह प्रगति मैदानी जनपदों तक ही सीमित है, पर्वतीय जनपदों की स्थिति जस की तस बनी हुई है अर्थात स्पष्ट रूप से देखा जाये तो पर्वतीय जनपद उद्योग शुन्य ही हैं। आज देश के 27वें राज्य के रूप में गठित उत्तराखंड राज्य ने 17 वर्षों की विकास यात्रा पूरी कर ली है। विगत एक दशक में उत्तराखंड संपूर्ण देश में एक विशिष्ट सांस्कृतिक आर्थिक एवं राजनीतिक पहचान बनाई है। शिक्षा, स्वास्थ्य, संचार, वित्तीय प्रबंधन, पर्यावरण संवर्धन, रोजगार सृजन तथा संपूर्ण आर्थिक विकास में राज्य ने महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल की है। परंतु समग्र विकास का एक चिंतनीय

पक्ष यह भी है कि, राज्य के अस्तित्व में आने के उपरांत भी क्षेत्रीय विषमता एवं असंतुलन में वृद्धि प्रवृत्ति निरंतर प्रभावी हो रही है। विकास का अधिकांश प्रभाव राज्य के चार मैदानी बाहुल्य जनपदों हरिद्वार, उधमसिंह नगर, देहरादून तथा नैनीताल में ही हो रहा है। यही कारण है कि सरकार द्वारा चलाई जा रही विकास संबंधी कार्यक्रमों में पर्वतीय क्षेत्रों को अधिक वरीयता दिए जाने की आवश्यकता समझी जा रही है, ताकि इस विषमता और असंतुलन की स्थिति को कम किया जा सके।

कृषि :

कृषि यहाँ के लोगों की जीवन रेखा है। प्रदेश की 3/4 जनसंख्या कृषि पर आश्रित है। भारत के अधिकांश राज्यों की तरह कृषि उत्तराखंड राज्य की अर्थव्यवस्था में सबसे महत्वपूर्ण है। कृषि हेतु यहाँ अभी भी उसके प्राचीन रूप का ही प्रयोग किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप कृषि में गिरावट रहती है। “पिछली शताब्दी के अंतिम दशक के बाद कृषि क्षेत्र में सरकार का निवेश बहुत ही कम रहा है। खेती किसानी एक घाटे का सौदा हो गया, क्योंकि कृषि में लगातार दी जाने वाली सहायता कम की जाती रही। कृषि को पूरी तरह से बाजार के हवाले कर दिया गया है। यहाँ तक कि सरकार जिस समर्थन मूल्य की घोषणा करती है उस पर पूरे देश में सिर्फ तीस प्रतिशत किसान ही अपना अनाज बेच पाते हैं। शेष 70 प्रतिशत अपना अनाज परंपरागत व्यापारियों को बेचते हैं, जहाँ उन्हें समर्थन मूल्य से कम पर सामान बेचना पड़ता है। सरकारी स्तर पर न तो अनाज खरीदने की व्यवस्था है और न उसको गोदामों में रखने की सही व्यवस्था। इसका परिणाम यह होता है कि अच्छी पैदावार होने के बाद भी किसान घाटे में रहता है। अगर किसानों की हालत को सुधारने के लिए सरकार गंभीर है तो उसे कृषि में निवेश को बढ़ाना होगा ताकि किसानों को सिंचाई का पानी, कृषि उपकरण, मिट्टी की जांच, बिजली आसानी से मिल सके। इसके अलावा बीज, खाद किसानों की आय दोगुना करने का फरमान बिना किसी केंद्रीय दिशा निर्देशों के कैसे

पूरा हो पाएगा। सबसे पहले सरकार अनाज का लाभकारी मूल्य और उसकी खरीद की व्यवस्था तो करे। वह किसानों में यह विश्वास तो पैदा करे कि खेती किसानी कोई घाटे का काम नहीं होगा। इसके साथ ही खेती की सहयोगी के तौर पर पशु पालन, मुर्गी पालन, मत्स्य पालन का विस्तार किया जाए ताकि किसान की आय बढ़ायी जा सके।"[19] पौध कृषि पर्वतीय स्थानों में विशेष रूप से प्रयोग में लायी जाती है। कृषि का प्राचीनतम रूप पहुंच कृषि है ऐसा सभी मानते हैं कि कृषि और पौध कृषि में मुख्य अंतर हल तथा पशुओं की अनुपस्थिति है। बहुत कृषक हल का व्यवहार न करके अपने हाथों से साधारण उपकरणों द्वारा खेती करते हैं। ऐसे समाजों में लोग छोटे बागानों में ही कुछ उपजा लेते हैं। इसलिए कुछ लोग इसे बागबान नाम भी देते हैं। पहाड़ों पर तो बागान जंगलों के उबड़-खाबड़ जमीन में ही बना दिये जाते है। बागवानी में बासमती चावल, गेहूं, सोयाबीन, मूंगफली, मोटे अनाज, दालें, और तेल के बीज आदि अधिक मात्रा में उगाई जाने वाली फसलें हैं। सेब, संतरे, नाशपाती, आड़ू, लीची, और प्लम जैसे फल व्यापक रूप से बड़े खाद्य उद्योग के लिए और महत्वपूर्ण हो रहे हैं। मखाना, बागवानी, जड़ी बूटी, औषधीय पौधे, और बासमती चावल के लिए राज्य में कृषि निर्यात जोनों की स्थापना की गई है, लेकिन सालों से पहाड़ में गिरती फसल की पैदावार पर न तो सरकार गम्भीर दिखाई दे रही है, न ही जनप्रतिनिधि। हाल यह हो गया है किसान अपनी पीड़ा बताएँ भी तो किसको? उन्हें सूदखोरों व बैंकों के कर्ज से उबरने का मौका ही नहीं मिल पा रहा है। ऐसे में पहाड़ का किसान साल-दर-साल पीछे को जा रहा है। जंगली जानवरों द्वारा हो रहे फसल के नुकसान, महँगे बीज और खाद-मृदा परीक्षण का नहीं होना, लागत के बराबर भाव न मिलना, न जाने कितनी समस्याओं को लेकर आज अन्नदाता घिर गया है। ऊपर से जब सरकार का किसानों की आय दोगुनी करने की बात का जुमला सुनाई देता है तो घाव पर एक और नश्तर चुभता प्रतीत होता है। पहाड़ के किसान अब इसे अपना उपहास मानकर मौन साध लेने को विवश हैं।

---

[19] https://www.himalprasang.com

आज आलीशान कोठियों या ऑफिसों में बैठे नेता व अधिकारी जो किसानों के लिये उनकी आय दोगुनी करने की बात करते हैं तो परिहास से अधिक कुछ नजर नहीं आता। धरातल पर उतर कर पहाड़ के किसानों की स्थिति का कोई जायजा तो ले, कि कैसे वह अपनी आजीविका चला रहे हैं। महँगा बीज, महँगी खाद का वास्तविक मूल्य भी अर्जित नहीं हो पाना, जंगली जानवरों का फसल चौपट करना, इन संकटों से घिरा आखिरकार अपना दुखड़ा रोए तो कहाँ रोए? ऐसे में सरकार न तो किसानों को सब्सिडी में बीज ही दिला पाई न ही उसका भाव। घर से लेकर मंडी तक सारे बिचौलियों की ही मनमानी चलती है। नैनीताल के अधिकांश ग्रामीण क्षेत्र में लोग खेतीबाड़ी व बागवानी से अपना जीवन यापन करते आ रहे हैं। पर आज तक यहाँ के किसानों के लिये सरकार या कोई भी जन प्रतिनिधि ठोस कार्ययोजना नहीं दे पाया। इस कारण यहाँ का काश्तकार कर्ज में डूबता जा रहा है। कभी किसान मंडी की बात होती है तो कभी कृषि विज्ञान केन्द्र स्थापना करने की, पर आज तक बात ही हुई है। काम कुछ नहीं हुआ। आलू के महँगे बीज के कारण सैकड़ों किसान मटर इस आस में लगा रहे हैं कि लागत तो कम होगी। मुक्तेश्वर किसान प्रोड्यूसर कम्पनी के एमडी 'देवेंद्र सिंह बिष्ट' का कहना है रामगढ़ एवं धारी व ओखलकांडा विकास खंड का अधिकांश भाग बागवानी और साग-भाजी आलू उत्पादक क्षेत्र है । जहाँ पर लगभग 150 गाँवों के किसान नकदी फसल पैदा कर आजीविका चलाते हैं। पहाड़ के नेताओं ने किसानों के नाम पर बहुत कुछ अपने घरों को भरा लेकिन दुर्भाग्य है कि आज तक किसी भी विकास खंड में न तो कृषि विज्ञान केन्द्र की स्थापना की न ही बीज उत्पादन की ओर ही ध्यान दिया। आज मजबूरी में किसानों को बाहरी प्रदेशों से महँगा आलू का बीज लेना पड़ रहा है। इसी क्षेत्र में सैकड़ों ऐसे किसान हैं जिनके नाम जमीन तक दर्ज नहीं है। हाईकोर्ट के आदेश के बाद भी आज सरकार द्वारा भूमिधरी का अधिकार देने की कोशिश तक नहीं की गई। ऐसे में यहाँ की जनता पलायन नहीं करेगी तो क्या करेगी। वे मानते हैं कि मौजूदा स्थिति के चलते आने वाले समय में पहाड़ में सारे खेत बंजर न हो जाएँ। यह एक गम्भीर खतरा है। कृषि क्षेत्रों में पुरुषों की तुलना में महिलाएं अधिक

लगी रहती हैं। पहाड़ के आर्थिक विकास की रीढ़ कही जाने वाली महिलाओं के लिये पंचायत चुनाव में 50 प्रतिशत आरक्षण के सिवाय विकास की शायद ही कोई योजना सामने आई है। पहाड़ी महिलाओं का बोझ कैसे कम हो, इस हेतु पहाड़ की भूमि को चकबन्दी का रूप देना अनिवार्य है ताकि महिला काश्तकार कृषि कार्य को एक ही जगह पर निष्पादित कर सकें। "2010 के दौरान गेहूं का उत्पादन 831,000 टन था और चावल का उत्पादन 6,000टन था, जबकि राज्य की मुख्य नकदी फसल, गन्ना, 4048 हजार टन का उत्पादन 100 हुआ था। कृषि उत्पादन के रूप में राज्य से 86% उत्पादन मैदानी क्षेत्रों से होता हैं बाकी शेष पहाड़ी क्षेत्रों से। वर्ष 2017-2018 के अनुसार राज्य का सकल घरेलु उत्पाद 2.58 लाख करोड़ रहा।"[20]

उद्योग:

विषम भौगोलिक परिस्थितियों अन्य विभिन्न कारणों से राज्य गठन से पूर्व यह क्षेत्र भारी व मध्यम उद्योगों की दृष्टि से काफी पिछड़ा था, परंतु राज्य के सृजन के पश्चात उत्तराखंड में बृहद उद्योगों की संख्या व उनकी स्थिति में काफी सुधार आया है । लेकिन यह सोचनीय नहीं है कि राज्य में उद्योगों की संख्या में वृद्धि के पश्चात भी राज्य की आर्थिक स्थिति अत्यंत सोचनीय है इसका एक प्रमुख कारण यह हो सकता है कि-ग्रामीण क्षेत्रों को विकसित न करना, जितने भी उद्योग स्थापित किये जा रहे हैं वे केवल मैदानी क्षेत्रों में ही किये जा रहे हैं। पर्वतीय इलाकों की स्थिति जस की तस ही है, वहाँ कोई विकास नहीं हो रहा। पर्वतीय क्षेत्रों में एक भी उद्योग स्थापित नहीं है। अधिकांश उद्योग तराई वह मैदानी क्षेत्रों में ही स्थापित है। खनिज संपदा आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है तथा उद्योगों की आधारशिला है। "पत्थर प्रधान उत्तराखंड की स्थिति खनिज संपदा की दृष्टि से सोचनीय मानी जाती रही, लेकिन भूवैज्ञानिक अन्वेषण से यह स्पष्ट हो चुका है कि स्थिति आशा जनक है। यहाँ के प्रमुख खनिज है:चूना पत्थर, मैग्नेसाइट, फॉस्फोराइट,

[20] http://dmmc.uk.gov.in/

पैरासाइट, तांबा, सीसा, टिन, जस्ता, जिप्सम, ग्रेफाइट, यूरेनियम"।[21] प्राकृतिक एवं धार्मिक पर्यटन स्थलों की दृष्टि से उत्तराखंड एक समृद्ध राज्य है। यहाँ 264 पर्यटन स्थल है पर्यटन आवास ग्रहों की संख्या 184 है। उत्तराखंड के महत्वपूर्ण राष्ट्रीय उद्यान में आने वाले भारतीय और विदेशी पर्यटकों की संख्या में निरंतर प्रतिवर्ष वृद्धि हो रही है।

कुमाऊँ अंचल के वन सुखद जलवायु प्रदान करते हैं। यहां के वनों का स्थान सर्वोपरि है चीड़, देवदार, बांस, शीशम, साल, सागवान आदि इमारती लकड़ी मिलती है। बांस, कागज व टोकरी बनाने के काम आता है। सैमल यहां दियासलाई बनाने व कत्था बनाने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। बुरांस से रंग व सरबत बनाया जाता है। यहां वन जड़ी-बूटियों, दुर्लभ जीव जंतु, वन्य प्राणियों, लिसा आदि पदार्थों के प्रमुख स्रोत हैं। वन यहाँ के लोगों के जीवन की आधारशिला है। लेकिन जब इन वनों की अंधाधुंध कटाई की जाए तो इनका जीवन इन्हें बचाने में ही संघर्षरत रहता है। 'चिपको आंदोलन' जिसका नेतृत्व 'चंडी प्रसाद भट्ट' और 'सुंदरलाल बहुगुणा' ने किया, इसी का एक उदाहरण है, जब वनों को बचाने हेतु यहाँ की महिलायें उनसे चिपक गयी थी। 'गौरा देवी' नाम की महिला ने इस आंदोलन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और अन्य महिलाओं को भी इसके लिए तैयार किया। बाहर से आने वाली ताकतवर शक्तियाँ जो यहाँ आकर अपना व्यापार स्थापित करना चाहती है और उसके लिए ये यहां के प्राकृतिक संसाधनों पर अपना अधिकार स्थापित कर लेते हैं। ये इन संसाधनों का दोहन बुरी तरह से करते है। "अश्मिका पत्रिका' जून 2015 की रीपोर्ट के अनुसार "विगत तीन वर्षों (2009-2011) में ही भारत में 5339 स्क्वायर किलो मीटर वन क्षेत्र विकास के नाम पर बलि चड़ गए तथा एक राष्ट्र को 2,000 करोड़ रुपये कि आर्थिक हानी हुई वनों की निरंतर कटाई के कारण हर वर्ष पर्वतीय क्षेत्रों में बाढ़ या फिर अनेक प्रकृतिक आपदाओं का खतरा बना रहता है। 16-17 जून 2013 को उत्तराखंड में आई प्रकृतिक

[21] https://www.himalprasang.com/

आपदा से 57,00 यात्रियों व पर्यटकों के जीवन को समाप्त कर दिया तथा बड़ी कठिनाई से सरकारी प्रयासों से 1,1700 लोगों के जीवन को ही बचाया जा सका। इसके अतिरिक्त प्रभावित पर्वतीय क्षेत्रों में सड़कों के टूटने, दुकानों, होटेलों के नदी में बहने के कारण भी राज्य में भारी जान-माल की क्षति हुई। ''[22]

2.3 सामाजिक-सांस्कृतिक:रीति-रिवाज, प्रथा-कुप्रथा, मान्यताएँ, अंधविश्वास

कुमाऊँ अंचल में अनेक सामाजिक रूढ़ियाँ व अंधविश्वास चले आ रहे हैं, जो संस्कारजन्य हैं। इन्हें इतनी जल्दी छोड़ पाना कठिन हैं। लोकतांत्रिक देश में मानवता के नाम पर जाती, धर्म, दहेज आदि कुप्रथाओं पर प्रतिबिंब लगा है। लेकिन समाज यह समाज किसी भी कानून को नहीं मानता बल्कि इन रूढ़िग्रस्त संस्कारों में ही जकड़ा हुआ है। प्रत्येक समाज में व्यक्ति का परंपरा एवं संस्कृति से अटूट रिश्ता होता है। भारतीय संस्कृति ग्रामीण जीवन में अधिक देखने को मिलती है। आज महानगरीय परिवेश में पाश्चात्य संस्कृति का इतना अधिक प्रभाव पड़ा है कि भारतीय संस्कृति इस परिवेश से एक प्रकार से लुप्त होती जा रही है। ''लोक सांस्कृतिक विरासत ने कुमाऊँ को तमाम समाजों में अलग पहचान दी है, तो यहां के समाज को अपने विविध रंगों के साथ उत्तरोत्तर आगे बढ़ाया है। बदली राष्ट्रीय और वैश्विक परिस्थितियों ने अन्य क्षेत्रों की तरह ही कुमाऊँ की मौलिक संस्कृति पर भी प्रहार हुआ किया है। पश्चिमी संस्कृति के अविरल प्रवाह, भौतिकता की चकाचैंध, बदलाव की बिनाह पर बनती-बिगड़ती आर्थिक नीतियों इत्यादि ने कुमाउंनी लोक संस्कृति को भी उसी तरह से प्रभावित किया है, जिस तरह से अन्य समाजों और समुदायों की संस्कृति को। आर्थिक परिस्थितियों के चलते कुमाऊँ के गांवों का खाली होने का सिलसिला जारी है तो गांवों में रची-बसी संस्कृति पर भी पलायन की मार पड़ी है। जब गांवों का

---

[22] आश्मिका पत्रिका,जून 2015,(घटते वन, बढ़ती आपदाएँ), एन.के तिवारी,पृष्ठ 39

अस्तित्व ही संकट में पड़ा हो, तब संस्कृति पर संकट की बात को समझना कठिन नहीं है।”[23] आगे इस विषय में 'सुभाषिनी शर्मा' ने कहा है- "भारतीय संस्कृति का मूल एवं वास्तविक रूप ग्राम जीवन में ही उपलब्ध होता है संस्कृति ही वह आधार है जिसके द्वारा व्यक्ति ज्ञान, कला, नैतिकता, प्रथा परंपराएं आदि के संबंध में सीखता है।"[24]

इन पिछड़े वर्गों में गरीबी एवं एक अभिशाप बनी हुयी है। रूढ़िवादी धार्मिक मान्यताओं की यहां जड़ें गहरी है। कुमाऊँ अंचल की संस्कृति में लोक गीतों का अपना विशिष्ट स्थान है। यह यहाँ के जन-जीवन से जुड़कर उसका अभिन्न अंग बन गए हैं। लोक संगीत और लोक नृत्य का यहाँ के निवासियों के जन-जीवन से सीधा संबंध है। यहाँ के लोक गीतों को मुख्यतः तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। देवी-देवताओं के अवसर पर गाए जाने वाले लोकगीत, संस्कारों के अवसर पर गाये जाने वाले लोकगीत और प्रणय एवं वियोग के लोकगीत। कुमाऊँ के पर्वतों की नदियाँ गांव खलियान और लहलाते खेत जिनको हम कभी नहीं भूल सकते! इनमें विशिष्ट प्रकार की संस्कृति व्यवहार, रहन-सहन, भाषा, वेशभूषा मिलती है। लोक संस्कृति की आत्मा गांव में निवास करती है। ग्रामीण जीवन लोक संस्कृति का परिचायक होता है। लोक संस्कृति किसी भी देश से संबंधित होती है। लोक संस्कृति के संदर्भ में 'डॉ संपूर्णानंद' ने कहा है "लोक संस्कृति वह जीती जागती चीज है, जिसके द्वारा लोक की आत्मा बोलती है। प्रत्येक ग्रामीण जनजाति वह आदिवासी समूह की अपनी संस्कृति परंपरा, लोक विश्वास, लोक व्यवहार, खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा आदि होते हैं। इस प्रकार समाज की हम लोग और लोकाचार प्रधान संस्कृति को लोक संस्कृति कहते हैं।”[25]

[23] कुमाऊँ लोक थात,भावना पांडे, उत्तराखंड संस्कृत विभाग, प्रथम संस्करण,पृष्ठ - 37

[24] 1 शैलेश मटियानी के उपन्यास,पटिवेश अौ िचना-संदर्भ,हमेंत सोनाले प्रकाशन संस्थान नयी ददल्ली प्रथम संस्किण 2014 पृष्ठ-126

[25] ग्रामीण समाजशास्त्र, डॉ सम्पूर्णानन्द पृष्ठ-41, राजकमल प्रकाशन

2.3.1 रीति-रिवाज :

प्रत्येक समाज में जीवन का एक मूल आधार उस समाज में प्रचलित रीति-रिवाज हैं, जो उसके संचालन में अपना महत्वपूर्ण योगदान निभाती हैं। यह रीति-रिवाज समाज में युगों से चलते आ रहे हैं, लेकिन समय के साथ इनमें परिवर्तन होना अनिवार्य है अन्यथा ये रीति-रिवाज अगर रूढ़ हो गए तो इनका स्थान रूढ़ियाँ, अंधविश्वास और कुप्रथाएँ ले लेती हैं। ये रीति-रीवाज ही तो होते हैं जो प्रत्येक समाज की संस्कृति से हमको जोड़े रखते हैं, और हमारे भीतर अपनी संस्कृति के प्रति मोह उत्पन्न कराते हैं। पर्वतीय जीवन से जुड़े अनेक रीति-रिवाज हैं जो आज पहाड़ी संस्कृति को बचाए हुये हैं अपने भीतर। इन रिवाजों में यहाँ के उत्सव-त्यौहार अपना विशेष महत्व रखते हैं, जैसे-नन्दा देवी का कौतिक, बाड़ेछिना की रामलीला,खड़ी होली, छरड़ि, घुघुतिया त्यौहार, असोज के नौरात्र, ओलगिया संक्रांति, घी संक्रांति, खतडुवा पर्व और चैत की फुलदेही इत्यादि। उत्तराखण्ड भौगोलिक एवं प्राकृतिक दृष्टि से देश के अन्य भू-भागों से भिन्न है और अपनी इसी भिन्नता के कारण, यहाँ की लोक संस्कृति विशेष एवं उल्लेखनीय है। जिस प्रकार प्रकृति के नाना उपादान-नदी, झरने, पुष्प, वृक्ष, लताएँ आदि धरती को सौन्दर्यवान करने के साथ ही अपनी उपयोगिता एवं महत्त्व सिद्ध करते हैं, उसी प्रकार लोक संस्कृति, लोकजीवन को विशिश्टता प्रदान करने तथा उसकी अस्मिता की पहचान कराने में भी महत्वपूर्ण है। साथ ही लोक संस्कृति मानव के चिंतन-मनन, मंथन, एवं उसके सोच को उजागर करने में भी सहायक सिद्ध होती हैं। ‘हरेला’ उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र में मनाया जाने वाला एक प्रमुख त्यौहार है। यूँ तो चैत्र मास की दशमी, श्रावण मास के प्रथम दिवस, सांतू- आठूँ, विजया दशमी के दिन भी ‘हरेला’ मनाया जाता है, किन्तु सावन के महीने का ‘हरेला’ सर्वाधिक प्रचलित है। इसे वैष्णव, शैव तथा स्मार्त सभी मनाते हैं। यह त्यौहार जहाँ एक ओर, प्रकृति एवं बागवानी पर आश्रित लोक जीवन की याद दिलाता है, वहीं दूसरी ओर हमारे पूवजों के वैज्ञानिक सोच एवं दृश्टि का भी परिचायक है। सांस्कृतिक दृष्टि से हरेला, नवजीवन, उत्साह, उमंग, हर्श एवं उल्लास का प्रतीक तो है ही, यह फसल बोने के लिये

मिट्टी की उर्वरता एवं बीजों की पुष्टता-परीक्षण करने का माध्यम भी रहा है। वर्षा के कारण सावन के महीने में मिट्टी की गुणवत्ता इतनी अधिक बढ़ जाती है, कि बीज और पौधे सहज ही विकसित होने लगते हैं। तभी तो आज भी यह लोक-विश्वास विद्यमान है कि 'हरेला' के दिन, यदि सूखी टहनी भी लगा दी जाए तो वह भी अंकुरित हो उठती है। आशाढ़ मास के 24-25 पैट यानि 7-8 तारीख़ को 'हरेला' बोया जाता है। और सावन के महीने में संक्रांति के दिन, एक पैट को काटा जाता है। वैसे तो इस दिन पाँच या सात अनाजों को मिलाकर 'हरेला' बोया जाता है, किन्तु चैत और असौज ;आश्विनद्ध मास के हरेले में, जौ और गेहूँ बोए जाते हैं। 'हरेला' बोने के लिये तिमिल के पत्तों के दोने बनाकर, बाँस की टोकरी में, और अब तो मिठाई के खाली डिब्बे में भी 'हरेला' बोया जाने लगा है। उनमें मिट्टी की मोटी पर्त बिछाई जाती है। उसके बाद एक-एक कर घर के सभी सदस्य या परिवार के मुखिया द्वारा गेहूँ, जौ, मक्का, उड़द, सोयाबीन, सरसों आदि सहज उपलब्ध पाँच या सात प्रकार के अनाजों को, मिट्टी की पाँच या सात पर्तें बिछाते हुए, प्रत्येक पर्त में बिखेरते हुए बुवाई की जाती है और पानी का छिड़काव करके, रोशनी से दूर उसे मंदिर या किसी अन्य अंधेरे स्थान पर रख दिया जाता है। ताकि हरेले का रंग हल्दी सा पीला हो सके। प्रतिदिन प्रातः ताजे पानी का हल्का सा छिड़काव करते हुए इसे सींचा जाता है। धीरे-धीरे बीज अंकुरित होने लगते हैं। संक्रांति के दिन तक पौधो की ऊँचाई इतनी हो जाती है कि इन्हें मुठ्ठी में समेटकर, सहजता से काटा जा सकता है। संक्रांति के पहले दिन अर्थात् मसाँती के दिन सायंकाल, 'पाती' या 'दाड़िम' की टहनी से 'हरेला' की गुड़ाई करके, उसे 'कलावा' से बाँध दिया जाता है तथा सूजी या आटे का हलवा बनाकर प्रसाद चढ़ाते हैं और वह प्रसाद सबको बाँटा जाता है। संक्रांति के दिन प्रातः घर का मुखिया मंदिर में दीप प्रज्ज्वलित करके, अपने माथे पर पिठ्या और अक्षत लगाने के पश्चात्, मंदिर में तथा हरेले पर पिठ्या-अक्षत चढ़ाकर, हरेला काटता है और सर्वप्रथम देवताओं को अर्पित किया जाता है, तत्पश्चात् एक-एक कर घर-परिवार के सदस्यों के माथे पर रोली और अक्षत लगाते हुए, दोनों हाथों में हरेले के तिनके लेकर,'जी रए/जागि रए/स्यावक जसि

बुहो/स्यूँ कस तराण/दुब जस हड़ुरिये/बेडु जस पड़ुरिये/सिल पिसी भात खाए/जाँ टेकि झाड़ जएकृ' कहता हुआ, फलने-फूलने का आशीश देते हुए उनके पैर, घुटने, कमर तथा कंधे पर छुवाते हुए पाँच, सात या दो बार सिर पर रखा जाता है, और उन्हें दक्षिणा भी देता है। कहीं-कहीं गाय के गोबर के साथ हरेला घर के मुख्य द्वार पर भी चिपकाया जाता है। परदेस में रहने वाले आत्मीय जनों को लिफाफे में रखकर डाक से हरेला भेजने की परम्परा भी रही है। कुछ माता-पिता आज भी अपने बच्चों के लिए हरेला भिजवाते हैं या संभालकर रखते हैं।

किसी समाज की जीवंतता उसमें प्रचलित रीति-रिवाजों, धार्मिक मान्यताओं, पारंपरिक नियमों पर निर्भर रहती है। अब तक हमारा समाज अपनी परंपराओं और मान्यताओं से ही सशक्त बना रहा। आज पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति के आकर्षण में हम अपनी परंपराओं, रीति-रिवाजों और पर्वों को भूलते जा रहे हैं। यही हाल रहा तो हमारी आने वाली पीढ़ी के लिए ये सब एक सुनी -सुनायी बात रह जाएगी। हमारी देव भूमि ने पुरातन काल से ही अनेक उत्सवों, संस्कृतियों का पोषण किया है तथा समाज को एक नई दिशा दी है। हमारे लोकपर्व, लोक-गीत तथा लोक उत्सव कहीं न कहीं धार्मिक एवं सामार्थिक सरोकारों से अवश्य जुड़े होते हैं। 'आठूं' भी कुमाऊंनी समाज का एक ऐसा ही लोकोत्सव है। लगभग पूरे कुमाऊँ व नेपाल हिमालय के पश्चिम अंचल में यह पर्व बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है। कुछ स्थानों को छोड़कर यह उत्सव अधिकांशतः पूरे कुमाऊँ में समान रुप से मनाया जाता है। आठूं उत्सव मुख्यतः भाद्रपद मास की अमुक्ताभरण सप्तमी तथा दुर्वाष्टमी के दिन मनाया जाने वाला उत्सव है। इसका आरंभ बिरुड़ पंचमी से माना जाता है। बिरुड़ पंचमी के दिन गांव की सयानी महिलाएं 'निराहार' उपवास रखकर पांच अनाजों को भिगोती हैं और घर में मन्दिर वाली जगह पर रख देती हैं। उसके बाद सप्तमी को बिरुड़ धोये जाते हैं तथा इससे उसी दिन गौरा का पुतला लाकर उसकी पूजा की जाती है। दूसरे दिन महेश के पुतले को लाकर उसकी भी इनसे पूजा की जाती है। दुर्वाष्टमी को 'अठ्वाली' भी कहते हैं। उस दिन 'आठूं खाला' (आठूं खेलने का आगन) में भी गौरा-महेश्वर (गमरा - मैसर) की पूजा की जाती

है। शिव के गणों के रुप में नन्दी, श्रृंगी को बनाया जाता है। पशुपति नाथ भगवान शंकर पशुओं से प्यार करते हैं। इस रूपक को दिखाने के लिए हिरन चीतल भी बनाया जाता है तथा अनेक पशुओं का स्वांग किया जाता है।

2.3.2 फौल फटकाना:

अनेक फल-फूल गौरा महेश्वर को चढ़ाये जाते हैं। जिसे पाने के लिए लोग ललायित रहते हैं। क्योंकि इसे शिव का आशीर्वाद माना जाता है। इसके बाद बिच्छू घास लगाई जाती है। माना जाता है, कि इसे लगाने से बुखार तथा अन्य बीमारियों से भी छुटकारा मिलता है। इसके बाद पुनः गौरा-महेश्वर को पधन के घर रख दिया जाता है और प्रत्येक सोमवार को खेल लगाये जाते हैं। यह अवसर पूर्व में तो एक माह तक चलता रहता था परन्तु आज गौरा-महेश्वर को जल्दी ही किसी मंदिर या नौले धारे के पास विसर्जित किया जाता है। बिरूड़ भिगोने के संबंध में यह कथा प्रचलित है कि एक ब्राह्मण की पांच बहुंए थीं। परन्तु उनकी कोई सन्तान नहीं थी। ब्राह्मण एक दिन अपने जजमान के घर जा रहे थे, वहां वे देखते हैं कि एक जगह कुछ लोग पूजा कर रहे हैं। ब्राह्मण पूछते हैं आप क्या कर रहे हो, इसे करने से क्या फल मिलता है, इसका विधि विधान क्या है? तो महिलाएँ बताती हैं कि हम गौरा-महेश्वर की पूजा के लिए पंच बिरूड़ भिगोते हैं, पांच अनाज; कलूं, गहत, गेहूं, मांस, गुरूंसद्ध भिगो रहे हैं। इनको भिगा कर भगवान शंकर की पूजा करेंगे तो भगवान शंकर प्रसन्न होकर हमारी मनोकामनाओं को पूर्ण करेंगे। तब ब्राह्मण ने उसका विधान पूछा तो महिलायें बोली कि निराहार रहकर धर्म परायण भक्ति से उक्त अनाजों को भिगोना चाहिए और सप्तमी के दिन मात्रा फलाहार लेना चाहिए आग में पकाया हुआ भोजन (अग्निपाक्) नहीं खाना चाहिए । जो इस तरह से मां गौरा की पूजा करेगा, उसकी मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी । ब्राह्मण ने यह बात घर में बतायी और उसकी बहुओं ने इस नियम का पालन किया और उन्हें पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई, हर कष्ट से उनको मुक्ति मिली और घर में चहुंओर खुशियां ही खुशियाँ आ गईं।

यह है पंच बिरुड़ और गौरा-महेश्वर की पूजा का माहत्म्य। इन कहानियों के इर्द-गिर्द आठूं उत्सव कुमाऊं और पश्चिम नेपाल के गावं में सर्वत्र देखने को मिलता है। अनेक गांवों में हिलजात्रा की धूम देखने को मिलती है। पिथौरागढ़ जिले में काली नदी के एक बड़े दायरे में आने वाले गांवों में हिलजात्रा का आयोजन बड़ी धूमधाम से किया जाता है। जिसमें मुखौटर नृत्य की प्रधानता रहती है। इस मौके पर खासकर हिरन-चीतल, बैलों की जोड़ी, गल्या बल्द (अड़ियल बैल), धान रोपती महिलाएं आदि से संबंधित नृत्य देखने को मिलते हैं। आठूं के मौके पर इन गांवों में लोकगीत व नृत्य चाचरी, ठुलखेल, ड्योड़ा आदि की धूम देखने लायक होती है। नेपाल और कुमाऊं अंचल की सांस्कृतिक विरासत सांस्कृतिक पर्यटन के लिए संबंल बन सकती है।

2.3.3 धार्मिक अंधविश्वास :

पर्वतीय संस्कृति में अंधविश्वासों की एक लंबी परंपरा रही है। अंधविश्वास, जो वैदिक युग से आज तक गतिमान है। पर्वतीय जीवन में अंधविश्वास विशेष रूप से उपस्थित है। जैसे- गौ हत्या का कठोर पाप, बलि प्रथा, घोर कलयुग चल रहा है, भविष्यवाणी पर भरोसा, ब्राह्मण पर हाथ चलाने से ब्रह्म हत्या का पाप लगेगा, अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए देवता का नाम लेकर मनौती करना, ब्यारी (बहू) का जेठ को स्पर्श नहीं करना, देव लगी तथा पितरों के रोष-तोष पर विश्वास करना आदि अंधविश्वास ही तो हैं। गणतुओं (ज्योतिषियों), जादू-टोना, देवलगी पर अंधविश्वास के चलते अगर कोई बीमार है तो उसका उपचार कराने के बजाय पहले यह सोचा जाता है कि-कहीं किसी का रोष-तोष तो नहीं है, किसी कि घात तो नहीं या फिर किसी का टोना-टोटका तो नहीं है! इतने में वह बीमार व्यक्ति अपनी जान खो बैठता है। इसी तरह पहाड़ के लोक देवता भी पहाड़ी लोगों की तरह ही माँस भक्षी होते हैं इसीलिए बीच-बीच में उनके भक्त उन्हें बकर मुंडों का भोग लगाते रहते हैं और इस भोग में माना जाता है कि जितना छोटा बकरा होगा, देवता उतना ही अधिक प्रसन्न होगा। अंधविश्वास इतने हैं कि शनिवार और मंगलवार का दिन जितना शुभ देवी-देवताओं

के मंदिर में जाना माना जाता है, उतना ही अशुभ किसी के घर जाना माना जाता है। इसी तरह लोक देवताओं या लोक देवियों का अवतार कराने कि यहाँ कुछ विशिष्ट और पूर्व निर्दिष्ट परम्पराएँ हैं। इन लोक देवताओं के जीवन कि पुनरावृत्ति डंगरियों (जिनके सरीर में यह लोक देवता अवतार लेते हैं) के सामने की जाती है अंत में अंगुलियों की कैंची फंसाए माथे के उपर हाथ ले जाकर आदेश करते हुये लोक देवता अपने -अपने लोकों को प्रस्थान करते हैं। लोक बोली में इसे 'कैलाश वासी' होना या 'घरी' जाना कहते हैं। एक गर्भवती स्त्री दूसरी गर्भवती स्त्री को स्पर्श नहीं कर सकती भले वह प्रसव वेदना में छटपटाती क्यों न रहे! और वह अपने शिशु को उस से प्रसव भी नहीं कराती है।

अंधविश्वास की पराकाष्ठा तो तब देखने को मिलती है जब धर्म का अर्थ ही ईश्वरवाद, बहुदेववाद तथा आत्मवाद हो जाता है अर्थात जो कुछ भी है वह अनादि है, अनंत शक्ति द्वारा संचालित है। अंचलवासियों का सम्पूर्ण जीवन प्रकृति पर आधृत है। यानि अनावृष्टि, अतिवृष्टि, बाढ़, भूकंप इत्यादी सभी कुछ ईश्वर पर निर्भर है। धार्मिक अंधविश्वास और परम्पराओं के नाम पर अनेक त्यौहारों पर संस्कृति के नाम केवल कीचड़ ही उछाला जाता है। जैसे- कुमाऊँ अंचल की प्रतिष्ठित देवी नन्दा देवी के मेले में जहाँ दूर-दराज तथा आस-पास के सभी गावों के लोग श्रद्धापूरक आते थे, लेकिन अब इस मेले में ऐसे लोग भी आते है जो अपने स्वार्थसिद्धि हेतु स्थानीय लोगों के साथ बुरा व्यवहार करते हैं, महिलाओं के साथ दुराचार करते हैं और उनको अगुवा कर ले जाते हैं ताकि उनके देह का व्यापार कर सके। अंधभक्ति और अंधश्रद्धा के कारण पहाड़ी युवतियाँ, विधवाएँ और बाल-विधवाएँ बाबाओं की शरण में भक्तिभाव से जाती हैं लेकिन प्रश्न यह उठता है- क्या इन बाबाओं के शरण में जाने वाली स्त्रियाँ अपने सतीत्व की रक्षा कर पाती हैं? ये पाखंडी, धूर्त चरित्रहीन लोग साधू-महंतों के भेष में इन भोली-भाली स्त्रियों का शोषण करते हैं। अंधश्रद्धा और अंधभक्ति के नाम पर इन विधवाओं और बालविधवाओं के साथ तरह-तरह के शोषण किए जाते हैं, जिस कारण समाज में इन विधवाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय हो गयी है। इन

अंधविश्वासों का शिकार सबसे अधिक अगर कोई होता है तो वह है पर्वतीय स्त्री, अगर परिवार के किसी सदस्य पर कोई विपत्ति आती है तो उसका दोष भी परिवार में आयी नई स्त्री को ही दिया जाता है।

पर्वतीय समाज में अशिक्षित लोग अंधविश्वासों के जाल में अधिक उलझे होते हैं। जिसके चलते समाज में समय-समय पर हत्या एवं हिंसा देखने को मिलती है। कुमाऊँ अंचल जहाँ लोग आर्थिक, शैक्षिक, दृष्टि से पिछड़े हुए हैं उन लोगों को इन सभी अंधविश्वासों में उलझाना बहुत सरल कार्य है। भूत-प्रेत संबंधी मान्यताएँ यहाँ अत्यधिक मात्रा में प्रचलित हैं। इन मान्यताओं के चलते ये लोग किसी भी घटना को इन सभी भूत-प्रेतों से ही जोड़कर देखते हैं। यहाँ तक कि अगर कोई व्यक्ति बीमार है, अस्वस्थ्य है तो उसका उचित उपचार कराने के बजाय इन्हीं भूत-प्रेतों को खुश करने हेतु पूजा-पाठ में ही उलझे रहते हैं। इसी तरह किसी भी शुभ कार्य से पहले इष्ट देवता की पूजा होती है तथा पंच-परमेश्वर के रूप मे माने जाते हैं। ऐसी मान्यता है कि जब तक इन देवताओं को खुश न किया जाये तब तक कोई भी कार्य शुभ नहीं होगा। और इस शुभ कार्य में कोई भी ऐसी स्त्री नहीं बैठ सकती जो अपने मासिक धर्म से गुजर रही हो और वह किसी भी वस्तु या व्यक्ति को स्पर्श भी नहीं कर सकती है यह एक कुप्रथा ही है कि उसको पाँच दिनों तक एक अलग कमरे में ही बंद होकर रहना पड़ता है ताकि कोई उसे स्पर्श न कर पाये। उसे अलग बर्तन दिये जाते है खाने के लिए ताकि घर पर कुछ भी अशुद्ध न हो। इसी तरह एक अन्य कुप्रथा है जब कोई स्त्री शिशु को जन्म देती है तो वह कुछ दिनों तक अन्य किसी गर्भवती स्त्री से नहीं मिल सकती। ऐसा माना जाता है यह शिशु और माँ दोनों के लिए अशुभ है अगर वो उसे देख भी ले तो। इस तरह के अनेक कुप्रथाएँ पर्वतीय जीवन में देखने को मिलती हैं जिनके कारण ये पर्वतीय लोग इन्हीं प्रथाओं-कुप्रथाओं में उलझे हुये हैं और आगे नहीं निकल पा रहे हैं।

इन कुप्रथाओं की तरह अनेक मान्यताएँ भी यहाँ प्रचलित हैं जैसे- काला कौवा बाँया उड़ना, काना ब्राह्मण सामने आना किसी नवीन या शुभ कार्य के आरंभ में अशुभ माना जाता है। स्वप्न दर्शन में भी शुभ-अशुभ का फलों का अनुमान लगाया जाता हैं। भगवान की पूजा यदि खंडित होने लगती है तो थाली के अक्षत बिखर जाते हैं यह भी अशुभ है, साथ ही महाकाल का शंख बजाने का अधिकार पुरुष को ही है यदि स्त्री महाकाल का शंख बजाती है तो बड़ा अनिष्ट होता है और पूजा करते समय पूजागृह के द्वीपों का बुझना तथा पूजा के चावलों के स्तूप का ढहना बड़ा अशुभ माना जाता है। जिस व्यक्ति की मंगल कामना के निमित्त पूजा की जाती है, उसके अनिष्ट की संभावना मानी जाती है। पुरुषों की बाँयी आँख तथा बाँया हाथ फड़कने से भी भावी अनिष्ट की आशंका की जाती है। परिवार के किसी व्यक्ति के विदेश जाते समय दही और चावल का टीका माथे में लगाना शुभ माना जाता है।

2.4 भौगोलिक संघर्ष : कठिनाईयों का पहाड़ :

2.4.1 जीवन की बुनियादी जरूरतें :

2.4.2 गति में अवरोधक साधनहीनता:

नौ अगस्त 2012 को जब देश की संसद भारत छोड़ो आंदोलन की 75वीं वर्षगांठ पर सामयिक हालातों पर चर्चा कर रही थी, तब मध्य हिमालय की पहाडियां यहां के जन-जीवन पर कहर बनकर टूट रहीं थीं, और इस बात के साफ संकेत दे रही थी, कि यदि हिमालय की

पारिस्थिकीय संवेदनशीलता के अनुरूप नियोजन नहीं किया गया तो प्रकृति जनित प्रलय रुकने वाला नहीं है जो, गुजरे कई दशकों से यहाँ की आबादी को निगल रहा है। नौ अगस्त की रात को प्रकृति का ऐसा ही विकराल स्वरूप पिथौरागढ़ की सीमांत तहसील बंगापानी के बरम क्षेत्र में देखने को मिला। क्षेत्र के एक गांव में आधी रात को हुए भूस्खलन के कारण मलबे में दब जाने से तीन लोगों की मौत हो गई। संपर्क मार्ग क्षतिग्रस्त हो गए। गोरी नदी में बना मोटर पुल टूट कर नदी में ही समा गया। इस भयावहता के कारण मदरमा गाँव के लोग घर छोडकर सुरक्षित स्थानों की ओर निकल गए। प्रशासनिक व्यवस्था मदरमा में राहत एवं बचाव कार्य पूरे भी नहीं कर पाई थी कि 13 अगस्त की मध्य रात्रि को धारचूला के मालपा क्षेत्र में मौत का भूस्खलन शुरू हो गया। अतिवृष्टि के चलते उफनाये मांगती नाले के कारण हुए भूस्खलन में सेना का कैंप ध्वस्त हो गया। अगले दिन खोजबीन करने पर सेना के जवानों समेत सात लोगों के शव बरामद किए गए। अगले कुछ दिनों में दो और लोगों के शव बरामद हुए, जबकि अगस्त महीने के अंत तक जारी खोजबीन के बावजूद 23 लोग जिनमें नेपाली मजदूर भी शामिल थे, कहाँ दफन हो गए पता नहीं चल पाया। इसके अलावा इस हादसे में करीब दो दर्जन खच्चर एवं अन्य मवेशी दबकर मर गए। चार दुकानें जमींदोज हो गईं यह वही मालपा कस्बा है जो 18 अगस्त 1998 में हुए भयावह भूस्खलन में नेस्तनाबूत हो गया था। तब कैलाश मानसरोवर यात्रियों समेत 260 लोग भूस्खलन के मलबे में दफन हो गए थे। इसके बाद 2006 में भी मालपा से होकर गुजरने वाले मांगती नाले ने तीन स्थानीय लोगों और 16 खच्चरों की जान ली थी। बरम क्षेत्र में भी इस बार का हादसा पहला नहीं है। 2009 में भी बरम में इससे भयावह भूस्खलन हुआ था, जिसमें 15 लोगों की मौत हो गई थी। विडंबना है कि यह सिलसिला थम नहीं रहा है। हर साल बारिश के मौसम में इस पूरे क्षेत्र में भूस्खलन की घटनाएँ हो रही हैं और जिंदगी दम तोड़ रही है। क्षेत्र में 1977 से लेकर अब तक 12 बड़े भूस्खलन हुए हैं, जिनमें 473 लोगों को जान गंवानी पडी है। सैकड़ों की संख्या में मवेशी मारे गए और करोड़ों रुपये की सार्वजनिक संपदा नष्ट हुई। लोगों के आवास, सड़कें, पुल, स्कूल भवन

आदि भूस्खलन की भेंट चढ़ गए। सरकार इसकी भरपाई के लिए करोड़ों की धनराशि भी आवंटित कर रही है। बीते वर्ष पिथौरागढ़ जिले में आपदा राहत के नाम पर सरकार ने 20 करोड़ रुपये जारी किए थे और इस साल 25 करोड़ रुपये आवंटित किये गए हैं। प्राकृतिक आपदाओं की दृष्टि से संवेदनशील उत्तराखंड के सीमांत और पर्वतीय जनपदों में अतिवृष्टि व भूस्खलन से होने वाले नुकसान की यह बानगी भर है, जो हर साल अपनी आवृत्ति दोहराती है तथा कई बार और भी भयावह तरीके से सामने आती है। इसके बावजूद इस पर अंकुश लगाने या नियंत्रण पाने के उपाय अब तक दम तोड़ते रहे हैं। घटना के बाद कुछ समय के लिए इस पर हो हल्ला तो मचता है, लेकिन फिर सब कुछ यथावत अपनी जगह पर आ जाता है। 1998 के मालपा हादसे में कैलाश मानसरोवर यात्रियों के मारे जाने पर जब शोर मचा, तो केंद्र सरकार के निर्देश पर तब धारचूला क्षेत्र का भूगर्भीय सर्वेक्षण कराया गया था। 'जियोलाजिकल सर्वे आफ इंडिया' ने भूस्खलन की संभाव्यता पर अपनी रिपोर्ट सरकार को पेश की थी, जिसमें कहा गया कि "क्षेत्र के दर्जनों गांव भूस्खलन की जद में आ गए हैं। ऐसे गांवों को विस्थापित किया जाना अत्यंत आवश्यक है, परंतु लगता है इस रिपोर्ट को सरकार ने ठंडे बस्ते में डाल दिया है। क्षेत्र के गाँव लगातार भूस्खलन के कारण जमींदोज हो रहे हैं, परंतु उन्हें विस्थापित करने की दिशा में रत्तीभर भी काम नहीं हो रहा है।"[26] प्रख्यात भू-वैज्ञानिक के.एस. वल्दिया कहते हैं कि "क्षेत्र में कई भूगर्भीय फाल्ट (दरारें) हैं, जो लगातार सक्रिय हैं। इन भूगर्भीय हलचलों के कारण भूस्खलन की गति भी तेज हो गई है।"[27] वह इस बात से निराश हैं कि भूस्खलनों की भयावहता की ओर सरकार का ध्यान दिलाए जाने के बावजूद कोई सुनवाई नहीं हो रही है। उत्तराखंड राज्य बनने के बाद अब तक पिछले डेढ़ दशक में बार-बार हुई भूस्खलन की घटनाएं हजारों लोगों की मौत का कारण बनी हैं। राज्य आपदा प्रबंधन

[26] https://www.gsi.gov.in/webcenter/portal/OCBIS/page17/pageLANDSLIDEHAZRD?_adf.ctrl-state=3o6ac8y8h_1&_afrLoop=14388912013888636#!%40%40%3F_afrLoop%3D14388912013888636%26_adf.ctrl-state%3D3o6ac8y8h_5

[27] https://www.gsi.gov.in/webcenter/portal/OCBIS/page17/pageLANDSLIDEHAZRD?_adf.ctrl-state=3o6ac8y8h_1&_afrLoop=14388912013888636#!%40%40%3F_afrLoop%3D14388912013888636%211 _adf.ctrl-state%3D3o6ac8y8h_5

विभाग के आंकड़ों के अनुसार भूस्खलन संबंधी घटनाओं में "वर्ष 2001 के बाद 5,300 लोगों को अपनी जान गंवानी पड़ी है। इसमें 4,000 से अधिक मौतें केवल 2013 की केदारनाथ आपदा के दौरान की हैं। हालांकि गैरसरकारी स्रोतों का मानना है कि केदारनाथ में 2013 में 5 हजार से अधिक लोगों की मौत हुई है।"[28] क्योंकि दूसरे प्रदेशों के अनेकों ऐसे लोग हैं जिनके परिजनों ने उनके लापता होने की रिपोर्ट ही नहीं दर्ज कराई। ऐसे में सरकारी स्तर से आपदा के दौरान लापता हुए लोगों की मृत्यु संबंधी प्रमाण पत्र उनके परिजनों को दिये ही नहीं गए हैं। बहरहाल राज्य आपदा प्रबंधन विभाग मानता है कि उत्तराखंड में भूस्खलन की लगातार होती घटनाएं मुख्यतः यहाँ की भौगोलिक स्थितियों के चलते भी सामने आती हैं। पहाड़ी इलाका होने के कारण उत्तराखंड में बडी संख्या में भूस्खलन संभावित क्षेत्र हैं, जिनमें से कुछ अत्यधिक खतरनाक स्थिति में हैं। अमूमन भारी बारिश होते ही पहाड़ी इलाकों में भूस्खलन की घटनाएँ बढ जाती हैं, जबकि जगह-जगह सड़कों, भवनों तथा डैम आदि का निर्माण भी भूस्खलन के पीछे बड़ी भूमिका निभा रहे हैं। साल 2016 में भूस्खलन संबंधी दुर्घटनाओं में 114 लोग मारे गए। वहीं साल 2014 में 66 जबकि 2015 में 53 लोगों ने भूस्खलन के चलते जान गंवाई। उत्तराखंड में भूस्खलन संबंधी खतरों का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि केवल चारधाम यात्रा मार्ग पर ही 529 भूस्खलन संभावित एलके मौजूद हैं। इसमें पिछले दिनों ही बदरीनाथ के पास भारी भूस्खलन हुआ था। इस मार्ग पर खासकर मानसून के दौरान बार-बार चट्टाने खिसकने और मलबा आने से रोड़ बंद होने की घटनाएँ सामने आती हैं। वहीं 155 किलोमीटर लंबे ऋषिकेश-गंगोत्री मार्ग पर सबसे ज्यादा भूस्खलन स्थल चिन्हित किए गए हैं। आपदा प्रबंधन विभाग ने रुद्रप्रयाग-गौरीकुंड रोड पर 152 स्थल जबकि ऋषिकेश-बदरीनाथ हाईवे पर 150 भूस्खलन स्थल चिन्हित किए गए हैं। रुद्रप्रयाग जनपद जहाँ केदारनाथ धाम स्थित है, वहाँ सबसे ज्यादा 319 भूस्खलन स्थल हैं, जिनमें से करीब 100 से ज्यादा केदार यात्रा मार्ग पर ही पडते हैं। इसी तरह गंगोत्री व यमुनोत्री धाम वाले

[28]http://dmmc.uk.gov.in/

उत्तरकाशी जिले में 185 भूस्खलन स्थल चिन्हित हैं। उत्तराखंड जैसे पहाड़ी राज्य में जब भूस्खलन संबंधी समस्या एक तरह से जनजीवन का हिस्सा बन गई है तब भी ये सवाल अपनी जगह हैं कि भविष्य में बड़े पैमाने पर जान-माल का नुकसान होने से रोकने को क्या कोई कदम उठाये जा सकते हैं या नुकसान कम किया जा सकता है! जानकारों के अनुसार भूस्खलन की दृष्टि से संवेदनशील क्षेत्रों को मजबूत करने का समाधान मौजूद है लेकिन इसके अमल पर आने वाली लागत के चलते ही इसे नजरअंदाज कर दिया जाता है। इस दिशा में ज्यादा काम हो भी नहीं पाया है। जनवरी 2017 में साइंस एल्सेवियर जर्नल में भू-आकृति विज्ञान पर प्रकाशित एक पत्र में कहा गया है कि "जब बारिश 155, 212 या 290 मिलीमीटर की एक खास सीमा तक हो जाती है तो पहाड़ की ढलानें भी उससे तर-बतर हो जाती हैं। ऐसी स्थितियों में भूस्खलन की संभावना बढ़ जाती है। अत्यधिक बारिश भूस्खलन की वजह बन जाती है। साथ ही संबंधित भूभाग में पहले से मौजूद पानी की स्थिति, इलाके की भूगर्भीय बनावट और अन्य स्थानीय कारक भी इसमें भूमिका निभाते हैं। ऐसी स्थितियों में एकाएक अतिवृष्टि होने पर भूस्खलन की समस्या का सामना करना पडता है।"[29] अगस्त 2016 में उत्तराखंड सरकार ने जापान इंटरनेशनल को-आपरेशन एजेंसी के साथ एक एमओयू करार किया है ताकि राज्य में भूस्खलन की समस्या का अध्ययन और उसके प्रभाव को कम करने की दिशा में काम किया जा सके। इस कार्यक्रम के तहत तीन क्षेत्र रुद्रप्रयाग, ऋषिकेश और नैनीताल चिन्हित किये गए हैं। इन क्षेत्रों में आने वाले वर्षों में जापानी विधियों से भूस्खलन रोकने के उपायों पर काम किया जाएगा। हालांकि हिमालय के पर्यावरण व समाज-संस्कृति पर काम करने वाले लोग कहते हैं कि संवेदनशील पहाड़ों को सुरक्षित रखने को लेकर सरकारी स्तर पर कोई कदम नहीं उठाये जा रहे हैं। पर्यावरणविद मानते हैं कि हिमालयी क्षेत्र में विकास योजनाएँ यहाँ की पारिस्थितिकी के अनुकूल नहीं बनाई जा रही हैं। भारी-भरकम निर्माण कार्यों से हिमालय की भीतरी हलचल तेज हो गई है। जिसका नतीजा भूस्खलन और उससे होने

[29] https://www.journals.elsevier.com/journal-of-asian-earth-sciences/

वाली जान-माल की क्षति के रूप में सामने आया है। जो पहाड़ की बेबसी को और भी बढ़ा रहा है।

इस नौ नवंबर को उत्तराखंड राज्य को बने 18 वर्ष पूरे हो गए। यह दिन लोगों को यह जानने या सोचने का समय जरूर देता है कि आखिर राज्य उस दिशा की ओर बढ़ रहा है या नहीं, जिसके लिए अलग राज्य की माँग को लेकर संघर्ष किया गया। राज्य के लिए संघर्ष के दौरान लोगों में यह भावना थी कि उत्तर प्रदेश में पर्वतीय इलाकों के साथ भेदभाव होता है और इस क्षेत्र के विकास की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता, अलग राज्य बनने के बाद सही तरह से विकास होगा, लेकिन आज 18 वर्ष पूरे होने पर कहना पड़ेगा कि राज्य विकास की उस दिशा में बिल्कुल आगे नहीं बढ़ पाया है। कहना तो यह चाहिए कि राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों में इस विभाजन का विपरीत ही असर हुआ है। राज्य बनने के बाद शिक्षा, स्वास्थ्य, सड़क, पानी और बिजली के क्षेत्र में गिरावट ही आयी है। यही आधारभूत समस्याएँ थीं, जिनका समाधान नए राज्य में प्राथमिकता के साथ होना चाहिए था। इसके विपरीत स्कूलों में शिक्षक नहीं हैं, अस्पतालों में डाक्टरों का अभाव है । इसका परिणाम यह है कि पर्वतीय क्षेत्रों से पलायन तेज हुआ है, जो भी आर्थिक तौर पर सक्षम है वह पहाड़ों को छोड़ देना चाहता है और लगातार छोड़ रहें है। राज्य बनने के बाद एक लाख से ज्यादा परिवारों ने पहाड़ छोड़ दिया है और मैदानी क्षेत्रों की ओर पलायन कर गए हैं। इस जनसंख्यात्मक परिवर्तन का परिणाम यह हुआ है कि मैदानी जिलों की जनसंख्या में तेजी से बढ़ात्तरी हुई है और पर्वतीय इलाकों में पहले से ही कम जनसंख्या और कम हो गई है। इस स्थिति में सरकार का ध्यान भी मैदानी इलाकों की ओर ज्यादा हो गया है और पहाड़ प्राथमिकता में पीछे छूट गए हैं। सरकार का दावा यह है कि राज्य बनने के बाद प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि हुई है लेकिन यह बढ़ोतरी मुख्य तौर पर मैदानी क्षेत्रों में ही हुई है, पहाड़ के लोगों की आमदनी में कोई खास बढ़ोतरी नहीं हुयी है। यही कारण है कि सरकार जिलों के हिसाब से प्रति व्यक्ति आय बढ़ने के बारे में नहीं बताती है बल्कि पूरे राज्य का मामला सामने रख देती है। क्योंकि जिलेवार बताने पर

असंतुलित विकास की तस्वीर सामने आ जाएगी। इसके लिए किसी एक दल को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि कांग्रेस और भाजपा दोनों ने ही बारी-बारी से शासन किया है लेकिन सरकारें लगातार अस्थिरता में ही बनीं रहीं। इन 18 वर्षों में नौ मुख्यमंत्री राज्य में बन गए इनमें से केवल एक, नारायण दत्त तिवारी ही पांच वर्ष का कार्यकाल पूरा कर पाए बाकि मुख्यमंत्री अपना कार्यकाल पूरा ही नहीं कर पाए। अगर एक वाक्य में कहा जाए तो सरकारों ने राज्य के लोगों को निराश ही किया है।

2.5 <u>राजनीतिक संघर्ष:</u>

उत्तराखंड, झारखंड और छत्तीसगढ़ इन तीनों राज्यों की माँग के केन्द्र में प्रजाहित एवं राज्य का सर्वांगीण विकास था किन्तु राजनीतिज्ञों के दबाव में खड़े हुए उत्तराखंड आंदोलन का परिणाम पहाड़ी मानस के सर्वांगींण विकास में परिणत नहीं हो पाया। गंभीरता से विचार करने पर यह पाएंगे कि विकास के चरण में इस क्षेत्र ने असमानता और आर्थिक विषमता का जो कटु अनुभव किया वही नये राज्य निर्माण की मूल प्रेरक शक्ति रही। स्वतंत्रता पश्चात राज्यों के एकीकरण में जितनी शक्ति लगायी गई यदि उतनी ही शिद्दत से इन पर्वतीय राज्यों के संतुलित विकास पर ध्यान दिया गया होता तो गांधीजी को यह कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती "यदि हिमालय न होता तो समझते उतरी भारत कभी का रेगिस्तान में तब्दील हो जाता।"[30] गांधीजी ने आने वाले समय में पहाड़ी दुर्दशा को पहले ही भाँप लिया था अतः उन्हें अंदेशा हो गया था, कि गणतंत्र की स्थापना के बाद पर्वतीय क्षेत्रों को नज़र अंदाज़ किया जा सकता है। केंद्र के नेता और संस्थानों ने यदि गांधीजी के निर्देश पर अमल किया होता तो ऐसी स्थिति नहीं पैदा होती। गांधीजी ने 1929 में उत्तराखंड में दो सप्ताह बिताए थे। पंद्रह दिनों के उत्तराखंड दौरे में विशेषकर कौसानी निवास के दौरान जन और जन प्रतिनिधियों से संपर्क और संवाद तथा अपने प्रति प्रखर निरीक्षण द्वारा वहाँ

[30] उत्तराखंड के आईने में हमारा समाज, पूरन चंद जोशी, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ 150

की समस्या पर जो विचार प्रकट किए थे और जो सुझाव दिए थे वे आज भी प्रासंगिक है। उन्होंने मूलतः चार समस्याओं को उत्तराखंड की मूल समस्या माना था, वे थी पहला, सारा देश विदेशी उपनिवेशवाद का शिकार था लेकिन पहाड़ी इलाक़े उन अधिकारों और सुविधाओं से वंचित है जिन्हें राष्ट्रीय आंदोलन ने संघर्ष से हासिल किया है। जिस प्रकार चम्पारण के लोगों ने सत्याग्रह द्वारा अपने शोषण का अंत किया था, उसी से प्रेरणा लेकर उत्तराखंड के लोगों ने भी जब गोली उतार आंदोलन में संघर्ष किया था इन्हें भूमि, ज्ञान, जंगल, पर्यावरण पर अपने सामूहिक अधिकारों के लिए उसी प्रकार सत्याग्रह करना पड़ा। गांधीजी से प्रेरणा लेकर ही पंडित 'गोविंद बल्लभ पंत' ने 'कुमाऊं की समस्या' पर एक पुस्तक तैयार की थी। गांधीजी का संदेश था कि 'पहाड़ पर मैदानी सोच प्रशासनिक ढांचा नहीं थोपना चाहिए।' पहाड़ की अपनी परंपरागत संस्थाओं और परंपराओं को आधार बनाकर उन्नति के नए रास्ते की खोज होनी चाहिए। दूसरी, पहाड़ी समाज में फैली कुप्रथाएं आंतरिक रूप से वहाँ के समाज को उन्नति के रास्ते पर अग्रसर नहीं होने दे रहा। अतः इस प्रथा उन्मूलन का आह्वान किया जाना चाहिए। तीसरा, औपनिवेशिक शिक्षा पद्धति ने स्कूलों, कॉलेजों को बाबू और चपरासी पैदा करने की मशीन बना दिया है। शिक्षा व्यवस्था की क़ीमत पर्वतीय प्रदेश की जनता को चुकानी पड़ रही है। शिक्षा के नए मॉडल खोजने के लिए गांधी जी की प्रेरणा से ताड़ी खेत, कुमाऊं में प्रेमाश्रम की स्थापना गांधीवादी नेता पंडित देवकीनंदन पांडे के नेतृत्व में हुई थी। चौथा, गांधी जी ने यह भी कहा था, कि उत्तराखंड की प्राकृतिक संपदा राष्ट्रीय संपदा है। इनका संरक्षण और संवर्द्धन उत्तराखंड के साथ साथ पूरे देश का दायित्व है। अतएव गांधीजी ने पहाड़ों की संपदा को राजनीतिक दोहन करने के लिए नहीं अपितु पहाड़ी सांस्कृतिक, परंपरा एवं व्यवस्था के अनुकूल विकसित करने की सलाह दी। उत्तर प्रदेश से विभाजित होकर स्वतंत्र राज्य बनने के पीछे का मुख्य उद्देश्य विकास था, किन्तु इसके नव अस्तित्व की केंद्र ने हमेशा अपेक्षा की। सरकारी नीतियाँ केंद्र से पर्वतों तक आते आते ध्वस्त हो जाती है। अतः पहाड़ मात्र राजनीतिक तोड़ जोड़ के अड्डे बनकर उभरे। सरकारें चाहें जिनकी भी

रही हो पहाड़ को मात्र कुर्सी की संख्या बढ़ाने का साधन ही समझा गया। केंद्र सरकार ने पहाड़ी वनांचल मैं भी मैदानी विकास के फ़ॉर्मूले को लागू किया। मैदानी क्षेत्र से प्राकृतिक भिन्नता लिए हुए पहाड़ मैदानी विकास के ढांचे में कैसे फ़िट हो सकते हैं? अतः आवश्यकता है सत्ता के स्थिरता की और भौगोलिक परिस्थितियों के अनुकूल शासन व्यवस्था को ढालने की। शासन के विकेंद्रीकरण ने पंचायती स्तर पर व्यवस्था के सुधार एवं विकास का जो संकल्प लिया था, पहाड़ी क्षेत्र में उसके परिणाम कही से सकारात्मक नज़र नहीं आ रहे हैं। पहाड़ अब भी जल आपूर्ति जैसी प्राथमिक सुविधा से वंचित है। सरकारें बदलती रही किंतु बिजली और पानी अब तक भी घर तक नहीं पहुँच पाया। ऐसा लगता है मानो विकास पुरुष यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते बहरा हो गया हो।

तृतीय अध्याय

3.शैलेश मटियानी की कहानियों में पर्वतीय जीवन संघर्ष

3.1 चयनित कहानियाँ एवं उनका परिचय

3.2 शैलेश मटियानी की कहानियों में पर्वतीय जीवन संघर्ष:विविध आयाम

3.2.1 पारिवारिकता :प्रेम, संयुक्त परिवार, दाम्पत्य

3.2.2 आर्थिक परिवेश - नौकरी, व्यवसाय, कृषि और श्रम

3.2.3 धार्मिक संघर्ष

3.2.4 राजनीतिक संघर्ष

3.2.5 सामाजिक संघर्ष

3.2.6 भौगोलिक संघर्ष

3.2.7 देश-प्रेम और राष्ट्रीय भावना

3.3 पर्वतीय रचनाकार एवं शैलेश मटियानी की विशिष्टता

तृतीय अध्याय

शैलेश मटियानी की कहानियों में पर्वतीय जीवन-संघर्ष

3.1 चयनित कहानियाँ एवं उनका परिचय:

दो दुखों का एक सुख

गोपुली गफूरन

सुहागिनी

अर्द्धांगिनी

अहिंसा

रहमतुल्ला

रुका हुआ रास्ता

जिबुका

सफर पर जाने से पहले

असुविधा

नदी किनारे का गाँव

मिट्टी

सुगंध

अर्धांगिनी:

शैलेश मटियानी की कहानियों में पहाड़ की वीरानी, विशिष्ट किस्म के संकट, सहजता, प्रेम, उदासीनता, आदि सभी तत्व विशेष रूप से झलकते हैं। विभिन्न जीवनानुभवों को किस तरह कहानी में अवतरित करना होता हैं उसकी मिसाल है-अर्धांगिनी कहानी पहाड़ों में रोजगार न मिलने के कारण अधिकांश युवा रोगजार की तलाश में शहरों की रुख़ करते या फिर फौज मे भर्ती हो जाते हैं। अर्धांगिनी कहानी का पात्र 'नैनसिंह' जब चार साल बाद छुट्टी लेकर घर आता है तो उसकी मनोदशा का वर्णन मटियानी जी ने बड़ी ही मार्मिकता से किया है। पहली बार घर लौटने की खुशी का जो एहसास उसके भीतर है उसको शायद मटियानी जी ही कहानी का रूप दे सकते थे। सूबेदार पूरे रास्ते अपनी सूबेदारनी को याद करते हुये जाता है और प्रकृति के विविध रूपों के साथ उसकी तुलना करते हुये वह मन ही मन प्रफुल्लित होता है। सूबेदार की सूबेदारनी का एक भिन्न रूप देखने को यहाँ मिलता है जब बस स्टैंड पर कुली की प्रतीक्षा में देर होने पर सूबेदार का सारा सामान अपने सिर पर उठा लेती है, इसलिए नहीं कि सूबेदार नहीं उठा सकता, बल्कि इसलिए कि सूबेदार की सूबेदारी और ठसक को धक्का पहुँचे-यह 'अर्धांगिनी' सहन नहीं कर सकती। एक-दूसरे के महत्व का भाव, प्रतिष्ठा की रक्षा, भावात्मक सहचारिता ही तो उसका भाव है। सूबेदारनी अपने पति को इस तरह विदा करती है ताकि उसे यह महसूस हो कि वह यहाँ घर पर रहकर भी और उसके साथ रहकर भी अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरे मन से निभा रही है। इसी संदर्भ में इस कहानी के विषय में 'प्रभाकर क्षोत्रिय' ने लिखा है- "पारस्परिक संभल, रागात्मकता, प्राकृतिक सहचारिता और जीने का आश्वासन देने के बावजूद 'अर्धांगिनी' सूबेदार-सूबेदारनी, पहाड़ की कठिनाईयाँ और संघर्ष, भौगोलिक विशेषताएँ, सामाजिक जीवन आदि के गहरे भावबोध से जुड़ी है। शायद इसी प्रामाणिकता के लिए लेखक उन कथाकारों को चुनता है, जिस पर उसकी पूरी और पक्की पकड़ होती है। इस कहानी का समूचा वर्णन इतना यथार्थ और विश्वसनीय लगता है कि उसके माध्यम से व्यक्त दूरगामी भी विश्वसनीयता पा लेता है जैसे -

परिचित रास्ते पर निःशंक चलता हुआ व्यक्ति सोच सकता है, अनेक चीज़ें देख सकता है, जबकि अपरिचित राह पर चलते हुये अधिकांश राह टोहने और आशंकित रहने में ही बीत जाता है।"[31] पूरी कहानी मानो भीतरी नदी की यात्रा करती है।

अहिंसा:

यह कहानी खाट बुनने वाले एक गरीब युवक 'जगेसर' और डॉक्टर 'गोदौलिया' के बीच तनी हुई है। जगेश्वर की घरवाली 'बिंदा' बीमार है। जिसका ऑपरेशन होना है जगेश्वर जो कि कि बिंदा को जी जान से चाहता है। सोचता है चाहे कुछ भी खर्च हो जाए मगर बिंदा बच जाए। लेकिन यह हो कैसे? अस्पताल में तो अभी इलाज तक ढंग से शुरू नहीं हुआ। तब अस्पताल में कर्मचारियों की बदौलत जगेसर को पता चलता है कि अगर डॉक्टर गोदौलिया के पास पैसे पहुंचा दिया जाए, तो वह जल्दी ऑपरेशन करके बिंदा को बचा सकते हैं। जगेसर ने जैसे-तैसे इंतजाम करके पैसे दिए भी पर डॉक्टरों की हड़ताल के चलते जो हालात बने उसमें बिंदा ने दम तोड़ दिया। कहानी के अंत में जगेसर डॉक्टर गोदौलिया की कोठी पर पहुंचता है, तो डॉक्टर के चेहरे पर पत्थर जैसा भाव है। हजार रुपये हड़प कर भी कोई मदद नहीं करके उसको पछताने का कोई भाव नहीं है। जगेसर को याद आता है कि अभी कुछ रोज पहले चारपाई की चूलें कसने और फिर चारपाई बुनने के घंटों श्रम के बाद उसे सैंतालीस रुपये मिले थे तो, वह कितना कृतज्ञ हुआ था। पर हजार रुपए हड़प कर भी जो पत्थर बना हुआ है, वह कम से कम इंसान तो नहीं हो सकता। जगेसर अपने गुस्से को अंदर ही अंदर मानो गहरे दबा देता है। और शांत मन की पूरी दृढ़ता के साथ डॉक्टर गोदौलिया के सिर पर वसूला दे मारता है। मानो वह एक पवित्र और महत्वपूर्ण लक्ष्य को पूरा कर रहा हो। और वसूले से डॉक्टर पर प्रहार करने के बाद जगेसर के मन में जो वातावरण को उमड़ता है वह इतना पवित्र और शांत किस्म का है मानो जगेसर महात्मा गांधी की सच्ची लड़ाई को ही आगे

[31] 'अर्धांगिनी' : स्मृति और यथार्थ की सहयात्री, प्रभाकर क्षोत्रिय, पहाड़ पत्रिका : हिमालयी समाज, संस्कृति, इतिहास तथा पर्यावरण पर केन्द्रित (शैलेश मटियानी के मायने), 2001, पृष्ठ - 257

बढ़ा रहा है। और जैसे उसने सचमुच एक जरूरी और पवित्र कार्य किया हो। यों 'अहिंसा' सिर्फ डॉक्टर गोदौलिया के लिए नहीं यह उन सब लोगों के खिलाफ एक प्रतीकात्मक लड़ाई नजर आती है, जो गरीब आदमी को इंसान नहीं समझते। पूरी कहानी में जगेसर और बिंदा का प्रेम इतने अनेकार्थी शब्दों में फैला हुआ है। ऐसा लगता है कि बीमार होकर चारपाई पर पड़ी बिन्दा जगेसर के रोए-रोए में समा गई है मगर डॉक्टर गोदौलिया के लिए वह एक जीवित इंसान नहीं महज एक केस है। और उसका मरना एक केस का बिगड़ना है। इससे यह जरूर पता चलता है कि हमारी चिकित्सा प्रणाली कितनी अमानवीय हो गई है कि गरीब और साधनहीन के लिए बीमारी का मतलब सिर्फ चुपचाप मर जाना है। डॉक्टरों का संवेदनशीलता से तो कोई रिश्ता ही नहीं बचा! 'अहिंसा' कहानी के विषय मे 'क्षितिज शर्मा' लिखते हैं-"जगेसर को विनम्र या कठोर बनाने में खाट बुनने वाली वृद्धा, मित्र की पत्नी, भाई, बच्चों का मासूम चेहरा, अस्पताल का दलाल कर्मचारी, डॉक्टर, मरीजों की कराह व उनको ठगे जाने की नई नई युक्तियां और इन सबसे अलग बिंदा को बचा लेने की भीतरी प्रार्थना और प्रयास महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ज़रा से प्यार-स्नेह व सहानुभूति से पिघल जाने वाला जगेसर डॉक्टर की हत्या कर देने वाला खूंखार आदमी कैसे बना! इसका उत्तर व्यवस्था की खामियों से खोजा जा सकता है। जब आदमी को पैसे की हैसियत से तोला जाएगा और मानव जीवन को बचाने का दायित्व संभाले लोग प्राणों का सौदा पैसे से करने लगेंगे तो परिभाषा हर चीज की बदलेगी। 'अहिंसा' और 'हिंसा' में फर्क करने वाले कारणों और सिद्धांतों को भी बदलना पड़ेगा। परिभाषाएं सैद्धान्तिक पक्षों पर ही टिकी नहीं रह सकेंगे। उन्हें दूसरे संबंधित चीजों को भी देखना पड़ेगा उनकी उपेक्षा करने पर सिद्धांत बेईमान हो जाएंगे। राजेंद्र यादव इस कहानी को पढ़ने के पश्चात अपना अनुभव व्यक्त करते हैं और वे लिखते हैं "अहिंसा कहानी से अभिभूत होकर मैंने उनको एक पत्र लिखा था कि इतनी सशक्त, पूरी रचना धर्मिता से लिखी और लक्ष्य कि ओर सधी हुई कहानी नहीं पढ़ी।"[32]

[32] पहाड़ पत्रिका : हिमालयी समाज, संस्कृति, इतिहास तथा पर्यावरण पर केन्द्रित (शैलेश मटियानी के

दो दुखों का एक सुख:

यह कहानी एक पहाड़ी गरीब स्त्री 'मृदुला' काणी तथा दो भिखारियों 'सूरदास' और 'कमरिया' कोढ़ी की कहानी है। वे घोर गरीबी और अभाव के बीच जिस तरह जीते-मरते और लोगों की दया बटोरते हुए अपनी जिंदगी को गुजारते हैं उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। कमरिया कोढ़ी मृदुला काणी को चाहता है, लेकिन मृदुला काणी को सीधा सरल सूरदास अच्छा लगता है। कमरिया इस पर जिस तरह से ईर्ष्याजन्य रोष से भरा नजर आता है और सूरदास के प्रति जिस तरह के शब्द इस्तेमाल करता है और न जाने क्या क्या कहकर गालियां देता है। उनका न मृदुला कहानी पर कोई असर पड़ता है न सूरदास पर। जिनका प्रेम सच्चा है और उनकी निर्मलता ऐसी है कि दूसरे को भी शीतल करती है। और फिर अंत में होता यही है कि जब मृदुला और सूरदास पति-पत्नी बन कर रहने लगते हैं तो कमरिया भी अपना विष और गुस्सा छोड़ देता है और धीरे - धीरे उसमें भी उज्ज्वल टूटती हुई दिखाई देती है यों मैले-कुचले और दीन-हीन दिखते भिखारियों और कोड़ियों का प्रेम भी कितना निर्मल हो सकता है और कितनी उच्चतर अवस्था में पहुंच सकता है। मैले लोगों के भीतर भी मोती और मणियों जैसी जगमगाती उज्जवल आत्मा है। इसे मटियानी जी जिस तरह से देखते हैं और कहानी में दर्शाते हैं वैसा कोई दूसरा नहीं कर सकता। शायद इसीलिए 'दो दुखों का एक सुख' शैलेश मटियानी की एक कालजयी कहानी ही नहीं है बल्कि यह हिंदी की उन शिखर कहानियों में से है, जिनसे उनकी शक्ति और ऊंचाई को नापा जा सकता है। सच तो यह है कि अगर मटियानी ने सिर्फ यही कहानी लिखी होती तथा कुछ और नहीं भी लिखा होता तो भी वह इतने बड़े ही कलाकार होते कि उनके चर्चा के बगैर हिंदी कहानी का इतिहास नहीं लिखा जा सकता था।"[33] 'दो दुखों का एक सुख' को केवल प्रेम कहानी कह कर नहीं समझा जा सकता

मायने), 2001, पृष्ठ - 191

[33] शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां, भाग -5, संपादक राकेश मटियानी -, प्रकाशक प्रकल्प प्रकाशन -, मोतीलाल नेहरू नगर, प्रयागराज - 211002, भूमिका सेशैलेश मटियानी की कहानियाँ), ठेठ हिन्दुस्तानी कहानी का जुगराफिया, प्रकाश मनु, पृष्ठ, 35

क्योंकि इस प्रेम में जीवन के अंत तक एक संघर्ष है वह संघर्ष जो प्रेम के बढ़ते रहने के साथ केवल वासना में परिवर्तित नहीं होता उस प्रेम को बचाये रखने का संघर्ष, उसमे निश्चलता और सच्चाई को बचाये रखने का संघर्ष और सबसे महत्वपूर्ण समाज से लड़ाई जो वे दोनों एक साथ मिल कर करते हैं अपने प्रेम के लिए। कठिन से कठिन और मैली, कुचली जिंदगी में भी प्रेम का बना रहना यह एक बड़ी बात है। गरीब, दुर्बल और असहाय कहे जाने वाले इस तबके की आत्मिक शक्ति को इतने पास से इतनी गहराई से देखने और इतना सम्मान देने वाला कथाकार मटियानी के सिवा हिंदी में कोई और हो ही नहीं।

रुका हुआ रास्ता: ”

कहानी मटियानी जी की एक साधनहीन पर्वतीय स्त्री की मार्मिक दसा को व्यक्त करने वाली कहानी है। कहानी की नायिका 'गोमती' पहले पति की मृत्यु के बाद आधारहीन जिंदगी को सहारा देने के लिए खीम सिंह के घर जा बैठती है। इसमें भी खीम सिंह के घर जाने में मन में लोक-लाज और मर्यादा का एक कांटा है। खीम सिंह को जब पक्षाघात पड़ जाता है तो, गोमती का संकट बहुआयामी हो जाता है। उसे वन, खेत, गाय, भैंस से लेकर लेकर खीम सिंह का मल मूत्र तक साफ करना होता है। यहाँ से कहानी बहुआयामी फलक ले लेती है। खीम सिंह को गोमती के चरित्र पर संदेह होने लगता है। गोमती युवा है और खीम सिंह अपाहिज़। उसके भीतर का पुरुष अपनी नजर में खुद को कोसता है और धिक्कारता है कि जिसे उसके अधीन होना चाहिए वो न होकर खीम सिंह स्वयम गोमती पर आश्रित होकर रह गया है। उसका पुरुष यथार्थवादी दानवीय रूप ले लेता है। शारीरिक क्षमताएं समाप्त है। पर आवाज और शब्दों से जिसमें-गालियां हैं, लानतें है, और पति की सेवा में कोताही के पाप भी है। गोमती धीरे-धीरे विद्रोह भी करती है। और यही विद्रोही भाव उसे किशन सिंह की पत्नी बना देता है। खीम सिंह से अलग हुए गोमती पाती है कि अपने पौरुष प्रदर्शन भद्देपन में किशन सिंह भी कम नहीं है। चाहता

है कि सारी दुनिया से कट कर अपने निज को भी खत्म कर दे गोमती। और संपूर्ण भाव और भावनाओं से उसके लिए समर्पित हो जाए। पर गोमती का विद्रोही स्वभाव और समर्पण के लिए कतई भी तैयार नहीं है। इसलिए खीम सिंह के गुस्से और कटु वचनों के बीच उसकी आंखों और चेहरे पर छाई असहायता गोमती को भीतर ही भीतर कचोटती है। उसे लगता है कि सिंह को उसकी जरूरत थी। वह छिपते-छिपते उस त्यागे हुए पति की सेवा को चली जाती है। 'क्षितिज शर्मा' यहां लिखते है इस कहानी के विषय में- "यह असामान्य व्यवहार जो घोर विपरीत परिस्थितियों में भी मानवीय पक्षों को जिंदा रखने को तत्पर रहता है- हमेशा आदमियत को ही सर्वोपरि मानता है, मटियानी जी की कहानीयों में बिखरा पड़ा है ध्यान से देखें तो इस कहानी में गोमती को छोड़ने के बाद भी खीम सिंह की सेवा में जाना, अपने निज को बचाना भी है। जो किशन सिंह की आपेक्षा की उपेक्षा करके ही मानवीय आधार पर टिका रह सकता था। अपने अंतर को बचाने के लिए यह उसका विद्रोह भी है। यह विद्रोह मनुष्यता से अलग हट रहे तत्वों के खिलाफ है।"[34]

सुहागिनी:

सुहागिनी शैलेश मटियानी जी की एक ऐसी कहानी है जिसमे एक गरीब अविवाहित पहाड़ी स्त्री को नियति तय करने वाले विश्वासों-अंधविश्वासों का शिकार होना पड़ता है। स्थानीय सामाजिक-धार्मिक विश्वास है कि अविवाहित स्त्री मोक्ष नहीं पा सकती। वे मानते हैं कि दोनों लोकों में पुरूषों के बिना स्त्री की मुक्ति असम्भव है। चूंकि वह एक गरीब निर्धन परिवार की स्त्री है जहाँ वह अपने एक असमर्थ ओर धर्मभीरु भाई के साथ रहती है, अब उसे अपने भाई और खुद को पापमुक्त

---

[34] शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां,भाग -4, संपादक राकेश मटियानी -, प्रकाशक प्रकल्प प्रकाशन -, मोतीलाल नेहरू नगर, प्रयागराज - 211002, भूमिका सेशिखर से सागर तक फैली कहानियां), क्षितिज शर्मा, पृष्ठ -29

करना है। उसका उपाय भी मिल गया है। पहाड़ों में माना जाता है कि अगर किसी स्त्री का विवाह नहीं हो पा रहा है तो उसका विवाह घड़े से करवा देने से वह 'सुहागिनी' हो जाती है। 'पद्मावती' के साथ भी यही होता है। पद्मावती समाज में मजाक का पात्र बन जाती है। ये वही लोग हैं जो, उसे घड़े से विवाह करने को विवश करते हैं। 'क्षितिज शर्मा' यहां उस दोगले समाज पर व्यंग्य कसते हुए लिखते हैं "धीरे-धीरे यह विवाह जब पद्मावती की आंतरिक शक्ति पाने लगता है, तो घट के प्रति उसका अनुराग उसके उपहास का कारण भी बन जाता है। यानी जो मान्यताएं घट को मूर्त पति रूप मानने को विवश कर रही है, वहीं उसका उपहास कर एक तरह से उसे अस्वीकार भी कर रही हैं। मान्यताएँ वहीं तक उदार होती है, जहां तक वे उसके होने को पुष्ट कर सकती हैं। उसके बाद वे व्यक्ति को अकेला छोड़ देती है। क्योंकि वह उस स्थिति को बना ले जाती है कि व्यक्ति के लिए उनसे अलग हो पाना आसान नहीं है।"[35] यहां से कहानी अपने पाठ से अलग एक मिथकीय यथार्थ के समानांतर खड़ी हो जाती जाती है। यहां पद्मावती का सच और यथार्थ मीरा के सच व यथार्थ से मिलता दिखाई देता है। यह मिथ है कि मीरा अदृश्य-अमूर्त कृष्ण को अपना पति मानती थी। आगे इस कहानी में पद्मावती का बदलता व्यवहार विद्रोही तो नहीं, लेकिन विरोध व्यक्त जरूर करता है।

जिबुका:

यह कहानी वर्ष 1958 के उत्तरार्ध में 'कहानी' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी भैरव प्रसाद गुप्त के संपादन में इस कहानी में शिक्षा प्राप्ति से वंचित बच्चों की लाचारी और उनके संघर्ष को मटियानी जी बड़ी ही मार्मिकता से व्यक्त करते हैं। साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में फैली बुरी आदतें जैसे जुआ खेलने की आदत का भी विरोध करते हैं, जहां आज का नौजवान अपने भविष्य की चिंता छोड़ इन सब गलत आदतों में जकड़ता जा रहा हैं। कहानी में जुआरियों के खानदान का 'सबल सिंह'

---

[35] शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां,भाग -4, संपादक राकेश मटियानी -, प्रकाशक प्रकल्प प्रकाशन -, मोतीलाल नेहरू नगर, प्रयागराज - 211002, भूमिका सेशिखर से सागर तक फैली कहानियां), क्षितिज शर्मा, पृष्ठ -20

अपने छोटे बेटे 'जीबन सिंह' को पढ़ा-लिखा कर पटवारी बनाना चाहता है। लक्ष्मण सिंह 'बटरोही' इस कहानी के विषय मे लिखते हैं "जीबुका पिछड़े गांव में रहने वाले जुआरी पिता की अपने पुत्र के बारे में महत्वाकांक्षाओं को लेकर लिखी गई कहानी है। और लेखक ने बड़े ही प्रतिभाशाली ढंग से अपने बचपन की महत्वाकांक्षाओं और परिवेशगत संघर्ष को चित्रित किया है।"[36] इसीलिए वह उसे अल्मोड़ा शहर में भेज देता है पढ़ने के लिए। लेकिन दस वर्षों बाद जब जिबुवा गांव लौटा तो सबल सिंह जा चुके थे और उसका बड़ा भाई 'खड़क सिंह' सारी जायजाद का मालिक बन बैठा था। जिबुवा ने इन दस वर्षों में एक से बढ़कर एक ताश-जुए के उस्तादों की संगत की थी। 'शेखर जोशी' इस कहानी के विषय मे लिखते हैं "मुझे कहानी बहुत अच्छी लगी थी। इसलिए नहीं कि इसमें पहाड़ी गांव पहाड़ी गांव की जिंदगी का जीवंत चित्रण था या इसका अंत प्रेमचंद की भांति संयुक्त परिवार परिवार की पैरवी में हुआ था या कि जिह्वा हृदय परिवर्तन के बाद एक भले आदमी के रूप में सामने आया था। कहानी का केंद्रीय भाव दीवान के स्कूल बस्ते के माध्यम से शिक्षा की ललक थी, जिससे जीबुआ अपने जीवन में प्राप्त नहीं कर पाया था। और अब दीवान को उससे वंचित नहीं रखना चाहता था। प्रकारांतर में शैलेश ने अपने अंचल के ही नहीं, सभी प्रतिभाशाली लेकिन शिक्षा प्राप्ति से वंचित बच्चों की पीड़ा को इस कहानी द्वारा वाणी दी थी। यह शैलेश मटियानी की व्यक्तिगत पीड़ा भी हो सकती है। मेरी भी और हम जैसे अनेकों की भी।"[37]

गोपुली गफुरन:

यह शैलेश मटियानी की महत्वपूर्ण कहानियों में से एक है। इसे लघु उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है। गोपुली गफुरन में शैलेश मटियानी ने गोपुली के माध्यम से दूर-दराज के पहाड़ी क्षेत्रों में जाति-विपन्न, निर्धन और बेसहारा औरतों की समस्याओं को उठाया हैं। इस कहानी की कथा का

---

[36] पहाड़ पत्रिका:हिमालयी समाज, संस्कृति, इतिहास तथा पर्यावरण पर केन्द्रित (शैलेश मटियानी के मायने), 2001, शैलेश मटियानी के मायने, 2001, मेरी नजर में शैलेश, बटरोही, पृष्ठ-204

[37] जैसा मैंने उन्हें जाना-समझा, शेखर जोशी, पहाड़ पत्रिका:हिमालयी समाज, संस्कृति, इतिहास तथा पर्यावरण पर केन्द्रित (शैलेश मटियानी के मायने), 2001, पृष्ठ-119

केंद्र बिंदु गोपुली है जो बाद में अपनी व्यवस्थाओं और सामाजिक उपेक्षा के कारण गफूरन हो जाती है। आर्थिक विपन्नताओं से निरंतर संघर्ष करते निम्न वर्ग की दयनीय दशा को भी यह कहानी दर्शाती है और आर्थिक संघर्ष से झुझते इस वर्ग की स्त्री की सोचनीय स्थिति को भी। गोपुली को अस्तित्व और जिजीविषा के लिए संघर्ष करते हुए चित्रित किया गया है उसका लक्ष्य है-स्वतंत्र और सार्थक जीवन की तलाश। शेरा के जिस जन-जीवन का इस कहानी में चित्रण किया गया है उसमें नौला गांव, ठाकुरगांव, मंगल गांव आदि बस्तियां हैं। यहां दो वर्ग है- एक ठाकुर ब्राह्मणों का और दूसरे स्लिपकारों का ठाकुर ब्राह्मणों के पास पशु, कृषि, व्यापार सब कुछ है जबकि शिल्पकारों के पास मजदूरी करने के अलावा कुछ नहीं। इस वर्ग चेतना को शैलेश मटियानी ने कहानी की एक अन्य पात्र 'देगोली' के के शब्दों में मार्मिक अभिव्यक्ति दी है - "हमारे घर अब दूध ही नहीं रहा। छान में बकरियाँ रह गई थी, तुम्हारे जेठ के हाथ-पांव ने के साथ वह भी खत्म हुई। खास बेचने वाली औरतों से भैंसे नहीं पल सकती। देखो तो, कैसा चौमास आया हुआ है। ठाकुर गांव के जमीदारों के यहाँ जाओ तो, भैंसे पोसार लगाई मिलेंगी कैसा धुआं उठा है घर-घर से इस वक्त! दूध-दही छान नोनी से अगाए रहते हैं उनके बच्चे। हम शिल्पकारों के ज्यादातर बच्चे बकरियों के नीचे गिलास लगाते हैं। जानवर भी वहीं पोसता है, जमीन हो। बाप-दादा ठाकुर की जमीन जोतते, इनके घर चीनते रह गए। आन-औलाद मजदूरी करके दिन काटने को परदेश जाने लगी।"[38]

नदी किनारे का गाँव:

यह कहानी एक ऐसे पिता के दुख की है जिसका युवा पुत्र विवाह के उपरांत ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। यह मटियानी जी की अंतिम कहानी है।

[38] गोपुली गफूरन, शैलेश मटियानी,

गोपाल प्रधान जो उस युवा का पिता है, वह पुत्र के लिए पूजा-पाठ, धर्म-सेवा द्वारा दुख पर विजय पाने की कोशिश करते है। इस कहानी में परिवार पूर्णतः सम्पन्न है। मृत्यु को भुलाने, जीतने और पुत्र-शोक को बर्दाश्त कर सकने की आकांक्षाएं और आत्मसंघर्ष इस कहानी में है। 'गिरिराज किशोर' इस कहानी के संदर्भ में लिखते हैं, “आकार के लिए उनकी कहानी 'नदी किनारे का गाँव' पाकर मैं बहुत खुश था। उसमें भी वही बेटे के मरने का मंज़र था। इतनी बारीकी से सब डिटेल्स दिए थे कि मैं चकित था।”[39] एक भरा-पूरा परिवार जहाँ सब मिलजुल कर रह रहे हैं, किसी भी सदस्य के मन में कोई मेल नहीं दूसरे के प्रति, यानी एक आदर्शवादी हिन्दू परिवार, ऐसा ही तो परिवार मटियानी जी चाहते थे असल जीवन में भी! 'राजेन्द्र यादव' शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां भाग-1 की भूमिका में लिखते हैं, “यह परिवार यह स्थितियां यह लोग और संबंधों का वह सौमनस्य मेरी याद में मटियानी की कहानी में पहली बार दिखाई दिया है। यह भारतीय परिवार का ऐसा संपन्न संसार है, जिसका सपना वे पिछले 10 वर्षों से देखते रहे थे। काश मेरा परिवार भी ऐसा होता, ऐसी ही आर्थिक निश्चिंतता, ऐसी आर्थिक सौहार्द्र, ऐसा ही सांस्कृतिक परिवेश। इस कहानी का दूसरा नाम अगर कहे, तो 'आदर्श हिंदू परिवार' भी हो सकता था।"[40]

सफर पर जाने से पहले:

इस कहानी में दाम्पत्य जीवन को बचाये रखने का एक अलग ही संघर्ष नजर आता है। यह कहानी दाम्पत्य विडंबना के साथ-साथ दैहिक भोग की विडंबना भी है जहाँ कथा नायक एक विचित्र उलझाव में है। दफ्तर की सीढ़ियां उतरते हुए वह बहुत परेशान है। दफ्तर से लौटने पर भी उसकी

---

[39] शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां,भाग - 4, संपादक राकेश मटियानी -, प्रकाशक प्रकल्प प्रकाशन -, मोतीलाल नेहरू नगर, प्रयागराज - 211002, भूमिका से क्या शैलेश फिर लौटेगा ?, गिरिराज किशोर, पहाड़, पृष्ठ - 130

[40] शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां,भाग -1, संपादक राकेश मटियानी -, प्रकाशक प्रकल्प प्रकाशन -, मोतीलाल नेहरू नगर, प्रयागराज - 211002, भूमिका से राजेन्द्र यादव, शैलेश मटियानी आस्था और : संघर्ष, पृष्ठ -17

परेशानी कम नहीं होती है। असल में उसकी परेशानी का एकमात्र कारण मिस्टर संगम की वो चिट्ठी है जिसमें उन्होंने घर आने की सूचना दी है। कथानायक की दुविधा यह है कि मिस्टर संगम उन्हीं दिनों उसके घर आ रहे हैं जब कथानायक को दफ्तर के काम से यात्रा पर जाना है। उसे इस बात का डर खाये जा रहा है कहीं मिस्टर संगम उसकी पत्नी के साथ वही सब न कर दे जो उसके और मिसेज संगम के बीच हुआ था। इसी चिंता में कहानी आरंभ होती है और इसी चिंता में खत्म हो जाती है। वह अपने और मिसेज संगम के संगम के संबंधों को तो छुपा देता है कहीं भी जिक्र नहीं करता लेकिन मिस्टर संगम के कुछ नीचता के प्रसंग जरूर उपस्थित करता है। ऐसा करते हुए अपनी सीधी-साधी पत्नी के आगे वह और अधिक विद्रूप स्वयं को महसूस करता है । इस कहानी में एक असुरक्षा का भाव नजर आता है पति की आंखों में अपनी पत्नी के प्रति और साथ ही एक ऐसा भाव जो पितृसत्तात्मक समाज मे सदियों से मौजूद है कि 'मैं तो पुरुष हूँ किसी के भी साथ कितने भी संबंध बना सकता हूँ' इस कहानी को मटियानी जी की एक अन्य कहानी **'असुविधा'** पुष्ठ करती है जहां अचानक पति-पत्नी के बीच प्रेम बासी होने लगता है और एक दिन पति को कोई प्रेमिका मिल जाती है जिसे वह घरबले आता है। ऐसी स्थिति में घर आई प्रेमिका के बीच के रोमांस के क्षणों में पत्नी मात्र एक चाय-पानी लेकर आने वाली एक सेविका भर है या फिर एक छोटी-मोटी 'असुविधा' जिसके चलते कथानायक घर आई उन्मुक्त प्रेमिका की देह को पूरी तरह भोग नहीं पाता!

मिट्टी:

यह कहानी भिखमंगे, टुंडे लालमन और उसकी घरवाली गनेसी पर लिखी गयी है । मटियानी जी ने जितनी तल्लीनता से इस कहानी को लिखा हैं उसका कोई जवाब नहीं! लालमन बीमार है, बीमारी के कारण लगातार छीज रहा है। लालमन की पत्नी गनेसी उसे हथेली में बिठा कर ठेलती हुई भीख माँगती है। लालमन के स्वादिष्ट भोजन खाने की इच्छा गनेसी को परेशान करती है।

जितना कुछ भीख में मिलता है उस से ज्यादा तो लालमन की खाने-पीने की इच्छाएँ पूरी करने और डॉक्टर की फीस और दवाओं के खर्च में चला जाता है। साथ में दो बच्चों की भी जिम्मेदारी भी है।

इस कहानी का अंत बहुत ही करुण होता है और शायद 'मिट्टी' नाम की सार्थकता भी यहीं साबित होती है। यह बात बहुत करुण लग सकती है कि जब लालमन गाड़ी से उतरकर निबटने बैठा और फिर मुँह के बल लुढ़क गया तो मिट्टी हो चुके लालमन को वहीं छोड़कर गनेसी उसकी उतारी हुई लुंगी को उस पर डाल देती है और डालडा के डिब्बे में भरे पानी को खेत में जल्दी-जल्दी उलटकर, अपने बच्चों के साथ वहाँ से चली जाती है। चलते समय अपने बच्चों को छाती से लगाये हुए गनेसी फूट-फूटकर रोती है मानो अपने आंसुओं से ही अपने पति का तर्पण कर देना चाहती हो।

'प्रकाश मनु' इस कहानी के विषय में लिखते हैं "शैलेश मटियानी की 'मिट्टी' कहानी में हिन्दुस्तान के गरीब तबके का याथर्थ है। यह गरीब हिन्दुस्तान की गलाजत की कहानी है, जिसे मटियानी ने ऐसी भाषा मे लिखा है, मानो घाव में से पीब बह रहा है। हालांकि मटियानी के शब्दों में इतनी करुणा भी है कि यह हृदयहीनता में भी एक तरह की करुणा से सीझी हुई लगती है। कुल मिलाकर मिट्टी एक ऐसी कहानी है जो हिंदुस्तान की समृद्धि के खोखले नारों पर एक तीखे सवालिया निशान की तरह टंगी है और शायद आगे भी टंगी रहेगी।"[41]

सुगंधः

यह कहानी मटियानी जी की गरीबी से त्रस्त एक युवती जो नाच-गाकर, लोगों के मन को बहलाकर अपना पेट भरती है 'कृष्णा मिरासिन' की है। उसके पास आय का कोई और स्रोत है ही

---

[41] शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां -5, ठेठ हिन्दुस्तानी कहानी का जुगराफिया, प्रकाश मनु, पृष्ठ - 30 पहाड़ पत्रिका : हिमालयी समाज, संस्कृति, इतिहास तथा पर्यावरण पर केन्द्रित (शैलेश मटियानी के मायने), 2001, पृष्ठ - 30

नहीं। ब्राह्मण जाति का चारुचंदर अपनी पत्नी से तिरस्कार पाकर कृष्णा के पास सुख भोगने के लिए आता है और कृष्णा उसको शरण देती है, क्योंकि वह जानती है कि इसी के सहारे हमारे पेट की भूख को मिटाया जा सकता है तथा परिवार का भरण-पोषण भी किया जा सकता है। इस कहानी में मटियानी जी ने पर्वत की एक गरीब स्त्री के संघर्ष को व्यक्त किया है, जहाँ वह अपना भरण-पोषण स्वयं करती है। अपने पेट भरने के लिए उसे अनेक अनैतिक कार्य करने पड़ते हैं। यह संघर्ष अकेले 'कृष्णा मिरासिन' का नहीं है बल्कि पहाड़ की प्रत्येक स्त्री का है।

3.शैलेश मटियानी की कहानियों में पर्वतीय जीवन-संघर्ष

3.2.1 पारिवारिकता:प्रेम, संयुक्त परिवार, दाम्पत्य

एक कथाकार के रूप में शैलेश मटियानी का सबसे प्रिय विषय क्षेत्र 'पारिवारिकता' या 'दाम्पत्य सम्बन्ध' है। वह पूरी तरह एक पारिवारिक व्यक्ति थे और परिवार ही उनकी सोच, संवेदना और रस का केंद्र रहा है, जिससे वे निरंतर जूझते रहे और संघर्ष करते रहे। यहाँ तक कि जब वे गांव के भोले-भाले लोगों की हालातों का चित्रण करते हैं या शोषितों के दुखों को बयां करते हैं, तो उनके केंद्र में परिवार का संघर्ष निरंतर मौजूद होता है। यह संघर्ष जब परिवार से निकल कर दाम्पत्य संबंधों और फिर बच्चों तक जाता है, तब एक नया लोक उत्पन्न होने लगता है, जहाँ सब अपने-अपने तरीके से संघर्षरत दिखाई पड़ते हैं। परिवार, दाम्पत्य और घर बचाने हेतु शैलेश मटियानी निरंतर संयुक्त परिवार को बचाए रखने की जद्दोजहद में लगे हुए मालूम पड़ते हैं क्योंकि उनके विचारों में उनकी परम्परा के बीज बोये हुए हैं और वे अपनी परम्परा को अपनी पीढ़ी के हाथों सुरक्षित सौंपना चाहते हैं। 'घर गृहस्थी' कहानी इसी संयुक्त परिवार का उदहारण है जहाँ परीतिमा काकी के परिचय के रूप में परम्परागत संयुक्त परिवार की मुखिया की चिंताओं के बहाने उस वातावरण का स्पष्ट चित्र ही हमारे सम्मुख प्रकट हो जाता है। शैलेश मटियानी लिखते हैं-"होते

होते परीतिमा काकी की भी यह चतुर्थ अवस्था आ गयी है। वह भादो का हिला गिला महीना चल रहा है। अगला असोज (आश्विन) का आ जायेगा। उधर खेतों में धान की बालियों में पीली रंगत जायेगी और 'परीतिमा काकी' तिरसटी पुरे करके चौसटी में पहुच जाएँगी। सिर पर अब पति की छाया भी नहीं, लेकिन भार तो पूरे कुटुंब का है। 'भार' और 'उम्र' दो विपरीत छोर हो गए हैं। परीतिमा काकी उन्हें एक करने की चिंता में है। परम्परा और संयुक्त परिवार की उसकी अटूट अवधारण उसे बता रही है कि चतुर्थ अवस्था उन्हें काम नहीं करने देगी और परिवार का दायित्व बाकी सदस्यों के रहते हुए भी, उन्हें और कष्ट पहुंचाता जायेगा।"[42] उनकी यह कहानी कष्टों से उबारने और परिवार को टूटने से बचाने के अनुभवों पर आधारित है। इसी तरह दाम्पत्य संबंधो पर शैलेश मटियानी ने अनेक कहानियाँ लिखी हैं। जैसे-'शरन्य की ओर', 'सावित्री', 'कुतिया के फूल', 'छाक', 'सुहागिन', 'हरीतिमा', 'असमर्थ', 'उत्तरापथ' आदि। इनमें 'शरण्य की ओर' एक रिक्शा चालक बसंता और उसकी पत्नी रामकली के दाम्पत्य की बड़ी ही करूण कहानी है। चंचल मना रामकली अपने पति को छोड़ किसी पहलवान के घर जा बैठती है उसके बाद जब वहाँ से भी मन ऊब जाता है तो ठेकेदार के घर रहने लगती है। इसी बीच कभी-कभार आते-जाते उसे बसंता मिल जाता है। उसके मन में अभी भी उसके लौट आने की उम्मीद बाकी है। और जब अंत में ठेकेदार 'रामकली' को अपनी भोग की वस्तु बनाता है और साथ में अपने दोस्तों की भी भोग्या बनने को मजबूर करता है, तो 'रामकली' रातों-रात अपने चंचल रूप को त्याग रणचंडी का रूप धारण कर अपने पति बसंता के घर में शरण ले लेती है। दाम्पत्य संबंधो की अत्यंत मार्मिक बारीकियों को शैलेश मटियानी यहाँ उभारते हैं। ऐसी ही एक और कहानी है-'सावित्री'। एक कोठे वाली स्त्री की मार्मिक दशा को यहाँ दर्शाया गया है। किस तरह एक कोठे वाली स्त्री एक विधुर पुरुष का प्यार, सम्मान पाकर बर्फ़ सी पिघल जाती है और फिर वह उसके घर का तिनका - तिनका एक कर जोड़ने लगती है और उसका घर बसाने लगती है। बलराम ठाकुर जब सावित्री

[42]. घर गृहस्थी (मेरी तैंतीस कहानियाँ), शैलेश मटियानी, आत्माराम एंड संस, दिल्ली,पृष्ठ -18

को अपनी पत्नी का दर्जा देता है तो वह उसकी घर गृहस्थी को पूरी तरह संभाल लेती है। यह दाम्पत्य का एक नया और अद्भुत अलक्षित पाठ है, जिसकी मिसाल कम ही देखने को मिलती है। इस संदर्भ में सुनीता लिखती हैं कि, "कई अर्थों में शैलेश मटियानी जी की कहानियाँ भारतीयता की पहचान या हिंदुस्तानी कहानी की जड़ों की खोज करती कहानियाँ लगती हैं । तमाम बदलावों और झंझावातों के बावजूद भारतीयता का सार तत्व पारिवारिकता है, मटियानी जी ने इसे पहचान लिया था। लिहाजा स्त्री-पुरुष के सहज आकर्षण और फिर पति-पत्नी के रूप में उनकी एकनिष्ठता का जैसा चित्रण इन कहानियों में हुआ है, वह दुर्लभ है। कहीं पुरुष भटका हुआ है, तो स्त्री उसे प्यार की कोशिश या दो मीठे बोल से उसे रास्ते पर ले आती है। और यदि स्त्री भटकी हुई है, तो पुरुष उसके अपने नीड़ में वापस लौट आने की अनंत प्रतीक्षा ही नहीं करता, वरन उसकी अटूट आस्था है कि वह एक न एक दिन लौटेगी जरुर और उसका नीड़ फिर चहचहाने लगेगा। यह बात जितनी पुख्ता ढंग से इन कहानियों में आई है, वैसा कहीं और देखने को नहीं मिलता। आज के भागमभाग वाले जीवन में, जब रोज ही न जाने किन-किन तुच्छ कारणों से और अहं के कारण हजारों घर टूट रहे हैं-ये कहानियाँ बड़ा ही सुकून देती हैं।"[43]

दाम्पत्य संबंधों को लेकर मटियानी जी की सबसे अच्छी कहानी है 'अर्धांगिनी'। इस कहानी का कथ्य सिर्फ इतना है कि सेना का एक सूबेदार छुट्टियाँ बिताकर वापस जा रहा है। पर अपने तैनाती क्षेत्र से चलने से लेकर घर पहुँचने तक की उसकी जो आकुलता है उसका चित्रण उसमें मटियानी जी ने बड़े ही सुंदर तरीके से किया है। पूरे रास्ते उसे किसी भी स्त्री के दिखाई देने भर से उसमें उसे अपनी सूबेदारनी की छवि दिखाई देती है। घर आकर कितनी जल्दी उसकी छुट्टियाँ पंख लगाकर उड़ जाती हैं उसे मालूम ही नहीं पड़ता फिर वापस जाते समय वह सूबेदारनी को साथ चलने को कहता है तो उसका जवाब होता है-"इस बार नहीं चल रही हूँ और जब छाया

[43] एक बड़े कद का कलाकार, सुनीता (जन कथाकार शैलेश मटियानी) प्रकाशन विभाग, निदेशक,प्रकाशक विभाग, सूचना और प्रशरण मंत्रालय भारत सरकार पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001

न रहे तब समझों साथ नहीं है। फिर बस में बैठते ही स्मृतियाँ पक्षियों की तरह उदित हो जाती हैं भीतर। कौन क्षण कैसे बीता सूबेदारनी के साथ, जंगल की हवा की तरह बजने लगता है भीतर।"[44] पूरी कहानी मानो भीतरी नदी की एक यात्रा है। दाम्पत्य संबंधो की ऐसी तरल कहानियाँ बहुत कम ही देखने को मिलती हैं।

शैलेश मटियानी की कहानियों की एक बहुत बड़ी धारा प्रेम कहानियों को लेकर है। प्रेम इनकी कहानियों में सदानीरा की तरह बहता है कहीं भी मरता नहीं, सूखता नहीं भले ही कुछ समय के लिए मंद हो जाए! लेकिन अनुकूल अवसर आते ही अंकुर की तरह फूट पड़ता है। यहाँ तक कि ये बीज केवल उसी के हृदय में ही प्रस्फुटित नहीं होते जिसके हृदय में यह है बल्कि अपने आसपास के संसार को भी वह हरियाली से भर देता है। सदा कहा जाता है कि प्रौढ़ अवस्था तक आते-आते प्रेम छीज जाता है, सूख जाता है लेकिन शैलेश मटियानी की कहानी 'कुतिया के फूल' प्रौढ़ दाम्पत्य प्रेम की अद्भुत और शायद एकमात्र कहानी है। दाम्पत्य का वह सफ़र जो दो लोगों से शुरु हुआ था अंत भी दो लोगों में ही होता है। वे दोनों घर में अकेले ही रहते हैं और वे ही एक-दूजे का सहारा होते है। शरीर यहाँ वासना पूर्ति मात्र के लिए नहीं है वरन् यह एहसास दिलाने के लिए है कि हम अकेले नहीं हैं और प्रेम केवल युवा अवस्था में ही नहीं होता बल्कि यह तो आजीवन एक दूसरे के साथ रहता है। जिस अवस्था में सभी शरीर को मिट्टी मान लेते है उस अवस्था में भी होता है लेकिन शरीर मृत्यु तक मिट्टी नहीं होता उसमें तब भी संवेदनाएं होती हैं। जरूरत होती है तो बस उनको टटोलने की। 'कुतिया के फूल' का कथानायक शास्त्री जी के शब्दों में-"श्रृंगार ही प्रेम नहीं, विषाद भी है...और आखिरकार इस रहस्य को समझ लेना जरूरी है कि वास्तव का संबंध तो अब होना है..।"[45]

---

[44] अर्धांगिनी, शैलेश मटियानी, कहानी संग्रह-माता तथा अन्य कहानियाँ 1993, आत्मा राम ऐंड संस, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 10

[45] कुतिया के फूल, शैलेश मटियानी, कहानी संग्रह - नाच जमूरे नाच 1995, आत्मा राम ऐंड संस, प्रथम संस्करण

इसी तरह शैलेश मटियानी की एक कहानी ‘छाक’ भी है। जिसमे ऐसे ही दिव्य प्रेम के दर्शन होते हैं। कथा-नायिका ‘उमा’ अपने पति के पहले प्रेम को जानती है और किशन मास्टर ने उमा से कुछ छिपाया भी नहीं है। साठ साल की उम्र में भी किशन मास्टर अपने प्रेम को भूला नहीं है। हालांकि ‘उमा’ को भी वे उतना ही प्रेम करते हैं कि वह अब उनकी संगिनी बन गयी और उनके अतीत की भी। अपनी बीमारी के समय गीता मास्टरनी के द्वारा की गई सेवा से वह इतना प्रभावित होती है कि उसे इस बात में कुछ गलत नहीं लगता कि उसका पति अभी भी उस स्त्री के प्रति कोमल भाव रखता है। गीता मास्टरनी की मृत्यु का समाचार सुन कर किशन मास्टर एक समय का ‘छाक’ छोड़ना चाहते हैं-गीता मास्टरनी के सम्मान के लिए, लेकिन उमा तो मास्टर की एक-एक मुद्रा का अर्थं समझ जाती है। और पति के साथ स्वयं भी वह एक समय का भोजन त्याग देती है। जैसे कि गीता मास्टरनी किशन मास्टर की नहीं अपितु उन दोनों के ही अभिन्न अंग थी। ‘असमर्थ’, ‘माता’, ‘सुहागिन’, ‘लो तुम खा लो’, ‘हरीतिमा’, ‘चुनाव’, ‘उत्तरापथ’, ‘मिसेज ग्रीनवुड’ आदि कहानियाँ भी इसी ढंग से लिखी गयी हैं, जिनमे बड़ा ही सीधा, सरल लेकिन तरल पानी सा प्रेम बहता है। प्रेम के साथ-साथ उसे बचाये रखना, अपने घर को टूटने से बचाना, यह एक बहुत बड़ी चुनौती है। एक सामान्य स्त्री अपने घर-परिवार को बनाने में अपना पूरा जीवन समर्पित कर देती है लेकिन जिन तिनकों को जोड़-जोड़ कर वह अपना महल बनाती है वो कभी कभी पल में ही बिखर जाते हैं और उसका परिवार रूपी महल ध्वस्त हो जाता है। 'पाप मुक्ति' कहानी मटियानी जी की एक महत्वपूर्ण कहानी है जहाँ इस कहानी की नायिका अपने पति को किसी और का होने से बचाने के लिए निरंतर संघर्षरत रहती है। उसे अपनी बहन और अपने पति के संबंधों पर संदेह होता है। वह गर्भ से है और एक कहावत है कि 'गर्भवती स्त्री को आपस में जुड़े नाग नहीं देखने चाहिए' लेकिन उसे अपने पति और बहन की जोड़ी, उनकी हंसी-ठिठोली ऐसी लगती है, जैसे खेतों में सर्पों की जोड़ी फन नचा रही हो।

3.2.2 आर्थिक परिवेश- नौकरी, व्यवसाय, कृषि और श्रम

अर्थ मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को ही प्रभावित करता है क्योंकि रोटी, कपड़ा और मकान व्यक्ति की प्राथमिक और स्वाभाविक आवश्यकताएं हैं। इन समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति धन यानी अर्थ के बैगर संभव नहीं है। शैलेश मटियानी एक ऐसे विशिष्ट साहित्यकार हैं जिन्होंने लेखन को ही अपने जीविकोपार्जन का माध्यम बनाया था। वे निरतंर अभावग्रस्त जीवन जीते हुए आर्थिक विषमताओं से गुजरते रहे हैं जिसकी झलक उनके सम्पूर्ण साहित्य में मिलती है। जिसके परिणामस्वरूप उनका साहित्य प्रेक्षक का नहीं अपितु भोक्ता का साहित्य बन गया है। उन्होंने सहानुभूति के आधार पर नहीं बल्कि स्वानुभूति के आधार पर अपना साहित्य रचा है। यही कारण है कि उनकी कहानियों के पात्र भी अभावग्रस्त जीवन जीते और आर्थिक विषमताओं से निरंतर जूझते मालूम पड़ते है। इसी संदर्भ में चेतना राजपूत लिखती हैं-"मटियानी की कहानियों के पात्र पाठक को अंदर तक झकझोर डालते हैं। 'एक कोपचा-दो खारी बिस्किट' कहानी का एक पात्र कहता है -'आज के ज़माने में हम गरीबों के लिए भाई-बहन, माँ-बेटे के पवित्र नाते कुत्ते की रोटियां हो गयी हैं।"[46]

शैलेश मटियानी ने आर्थिक समस्याओं से निपटने हेतु अनेक व्यवसाय अपनाए। वे निरंतर छोटी सी छोटी नौकरी भी करते नजर आते हैं। पर्वतीय लोगों के पास अपने जीविकापार्जन हेतु कोई विशेष रोजगार उपलब्ध नहीं होता जिसके परिणामस्वरूप वे शहरों की ओर रुख करते हैं और तब इन भोले-भाले लोगों को रोजगार के नाम पर ऐसे काम दिए जाते हैं जिन्हें करना अत्यंत चुनौती का कार्य होता है। रोजगार के नाम पर इनका शोषण किया जाता है।

---

[46] चेतना राजपूत,जन कथाकार शैलेश मटियानी (आर्थिक समस्याओं से झुझते शैलेश मटियानी और उनके पात्र) प्रकाशन विभाग,निदेशक,प्रकाशक विभाग,सूचना और प्रशरण मंत्रालय भारत सरकार पटियाला हाउस,नई दिल्ली 110001

शैलेश मटियानी की कहानियों के पात्र रोटी की तलाश में यहाँ-वहाँ भटकते और अपराध करते हुए पाए जाते हैं। इस दृष्टि से 'चील' कहानी उल्लेखनीय है जहाँ नायक 'रामखिलावन' भूख से पीड़ित होकर चोरी करता है और पकड़े जाने पर समाज से ही प्रश्न करता है, "चोरी न करीं, तो हम का करीं! भुक्खे मर जाईं?"[47] अगर कृषि की बात करें तो कृषि की उपज नाममात्र होती है। इतनी भी नहीं कि एक परिवार का भरण पोषण हो पाए! 'कृषि उपज की कीमत राष्ट्रीय औसत से 3.4 गुना कम है।' चूकी कृषि की उपज कम होने के बाद भी वहाँ रोजगार का एकमात्र साधन कृषि ही है और आधी से अधिक आबादी कृषि में ही लीन है। यह कमर तोड़ मेहनत उन्हें एक वक़्त का भी भरपेट भोजन मुहैया नहीं करा पाती। यहीं कारण है कि आज पहाड़ों से श्रम का महत्व निरंतर कम होता जा रहा है और वहाँ का एक-एक व्यक्ति अपने रोजगार के लिए शहर की ओर रुख कर रहा है। लेकिन उसे कहाँ मालूम कि आगे और भी बड़ी समस्याएं उसका इंतज़ार कर रही हैं। वह अपने खेत, नदी, पर्वत, पहाड़ सब छोड़ रोजगार की तलाश में अपनी मिट्टी को त्यागने के लिए मजबूर है। जर्मन कवि ब्रेख्त भी यही कहते हैं- "वे पर्वतों की समस्याएं पीछे छोड़ आते हैं तो आगे मैदानों की समस्याओं के शिकार होते हैं।"[48]

शैलेश मटियानी की 'बत्तीस दांतो के टकराने वाला पहाड़ी सेब' कहानी में कृषक समाज का चित्रण बखूबी देखा जा सकता है। पुणे ग्राम नैनीताल की कड़कड़ाती सर्दी में भी सेब बेचने का परिदृश्य देखने योग्य है "शैलेश मटियानी की कहानियों में कृषि उद्यान निवासियों के जीवन यापन का मुख्य स्रोत है। अनउपजाऊ पथरीली भूमि, छोटे-छोटे सीढ़ीदार खेत मैदानी भागों की तुलना में कृषि योग्य नहीं होती। इसी प्रकार, कृषि पर निर्भरता के साथ - वनों पर भी पूर्ण रूप से निर्भर रहता है जिसे मटियानी जी ने अपनी कहानियों में दर्शाया भी है। 'काला कौवा' और 'शीशा' कहानी में लकड़ी व चारे के लिए वनों पर निर्भरता को लेखक ने स्वीकार करते हुए लिखा है "ओखली से

---

[47] चील, कहानी संग्रह - महाभोज, शैलेश मटियानी, आत्माराम ऐंड संस,प्रथम संस्करण
[48] ब्रेख्त, जर्मन कवि ...

निपटी कुंती वन घास काटने चली गई। घाम नहीं फूटा, तब गई थी, एक बार दिन में लकड़ी काटकर पहुंच गई। सांझ की बेला दीपक की ज्योति के साथ घर लौटी।"[49] लिक कहानी में लेखक ने सुना वृक्ष की श्रेष्ठता को इस प्रकार प्रकट किया है-"गुरु! पेड़ों में पेड़ तुण, मनुष्यों में मनुष्य बामुण ऐसा कह गए हैं पुरखे।"[50] वनों से संबंधित उद्योग- पेपर मिल, टरपेंटाइन, फैक्ट्री, लिसा आधारित उद्योग, कास्ठ उद्योग, खेल का सामान बनाने के उद्योग, जड़ी-बूटी उद्योग, सुगंधित तेल व इत्र, रेशम, चमड़ा, प्लाईवुड, टोकरियां, चटाई, पेंसिल, गोद, चाय, घी, डेयरी उद्योग भी स्थान-स्थान पर स्थापित हैं। 'काला कौवा', 'एक रुका हुआ रास्ता', 'छाक' आदि कहानियों में इन सभी के उदाहरण देखे जा सकते हैं।

कृषि कार्य में पुरुषों के साथ-साथ महिलायें भी निरंतर मेहनत करती हुई नजर आती है महिलाओं को दोहरी जिम्मेदारी का शिकार होना पड़ता है। एक साथ पूरे घर की जिम्मेदारी और फिर कृषि का कार्य, उनके लिए यह बहुत ही मुश्किल होता है लेकिन वे पूरी लगन से अपनी जिम्मेदारियों को निभाती हैं। शैलेश मटियानी ने ऐसी ही कामगर स्त्रियों को अपनी कहानियों में नायिका की जगह दी है। उनकी कहानियों में स्त्री पात्र किसी भी पुरुष की जिम्मेदारी या बोझ नहीं है, बल्कि वह अपना भरण पोषण स्वयं करती नज़र आती है। वह किसी की भी मदद की मोहताज़ नहीं होती, बल्कि अपने साथ-साथ वह अपने पूरे घर की जिम्मेदारी अपने कन्धों पर लिए हुए होती है। 'घर की लक्ष्मी' कहानी में 'रुपली' किस तरह घर के भीतर और बाहरी सारी जिम्मेदारियों को बखूबी निभाती है। जब उसका पति 'त्रिलोक' सिंह नशे में घर लौटता है और रुपली उसे देख विचलित हो जाती है, तब त्रिलोक सिंह सोचता है "अहा रे, नारी का चित्त है। पुरुष का दुःख देखकर करुणा से हाहाकार कर उठता है।...और कल रात ही जाना था अपने विवाहित जीवन के अट्ठाईस वर्षों के

---

[49] काला कौवा,शैलेश मटियानी, शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां भाग -1, संपादक राकेश - मटियानी, प्रकाशक प्रकल्प प्रकाशन -, मोतीलाल नेहरू नगर, प्रयागराज - 211002, पृष्ठ -474
[50] काला कौवा,शैलेश मटियानी, शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां भाग -1, संपादक राकेश - मटियानी, प्रकाशक प्रकल्प प्रकाशन -, मोतीलाल नेहरू नगर, प्रयागराज - 211002, पृष्ठ -197

बाद तिरलोक सिंह ने कि शराब की तल्खी और घरिणी के आंसुओं में तेज़ाब-गंगाजल का जितना अंतर होता है।”[51]

पशुपालन पर आधारित सामान्य जन-जीवन गाय, भेड़, बकरी, भैंस आदि निर्बल, निर्धन की आजीविका के साधन हैं। मटियानी जी लिखते हैं-"भैंस और बकरियां चराने गोश्त बेचने के लिए, सिर पर गोश्त की डलिया लिए गांव के चक्कर काटने का काम हुआ करता था।"[52] इन पालतू पशुओं को पालने की प्रथा थी जिसका उल्लेख मटियानी जी ने अपनी कहानियों में विस्तृत रूप से किया है। बकरे को अर्थव्यवस्था का आधार माना जाता है और गांव में लोगों द्वारा भोजन के रूप में प्रयोग होता है। ‘मुड़ मुड़कर’ मत देख की भूमिका में मटियानी जी लिखते हैं कि-"क्या इसी दिन के लिए पाला पोसा गया था उसे इतने लाड़ प्यार से ?"[53] इसी प्रकार 'मैमूद' कहानी मटियानी जी की एक बकरे पर लिखी गई कहानी है। यह बकरा मेहमान नवाज़ी में घर की इज्जत रखता है। घर की आर्थिक व्यवस्था कमजोर है लेकिन बकरे के होने से भोजन का स्वाद मेहमानों को दिया जा सकता है। लेकिन उसके पालनकर्ता को एक पीड़ा है, जो संवेदना के स्तर पर जुड़ गई है "अब तुम लोग मेरे मैमूद के सिर को धड़ से कैसे जुदा कर रहे होगे, कैसे उसकी खाल खींच रहे होगे, कैसे उसका गोश्त पका रहे होगे । जार-जार रोती रही हूं मैं।"[54] ‘लो तुम भी खा’ लो शीर्षक कहानी में ‘भागुली’ बड़े प्रेम से पालतू पशुओं की देखभाल करती है। लेखक इसे बड़ी बारीकी से उभारता है। "सेतुली फिर हुमक कर सिंग से खेल रही थी, जैसे छेड़खानी करना चाहती हो। सिंग भी नहीं निकले हैं अभी ठीक से। अंकुर से फूटे हुए हैं। एक गुदगुदी सी लगती है। कितना मार्मिक चित्र है कि आदमी जब किसी भी चीज़ से गहरा जुड़ जाता है तो, प्रकृति और पशु पक्षी तक अपने में

---

[51] कहानी संग्रह-कन्या तथा अन्य कहानियां,शैलेश मटियानी (घर की लक्ष्मी) पृष्ठ 127,आत्मा राम ऐंड संस,प्रथम संस्करण

[52] शैलेश मटियानी, मुड़ मुड़कर मत देख - पृष्ठ -16

[53] शैलेश मटियानी, मुड़ - मुड़कर मत देख पृष्ठ - 15

[54] शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां, भाग -3, संपादक राकेश मटियानी -, प्रकाशक प्रकल्प - प्रकाशन,
मोतीलाल नेहरू नगर, प्रयागराज - 211002, पृष्ठ -300

शामिल अनुभव होने लगते हैं।"[55] ग्रामीण लोगों का आर्थिक जीवन किस तरह पशुपालन पर टिका हुआ है उसका बहुत सुंदर उदहारण 'काला कौवा' कहानी में मिलता है। "घर में ऋण की पोटली खिसकेगी, लछमी मैया आएगी, शहर में दो-तीन असील भैसें आएंगी। शहर में दूध लगा दोगी हलवाइयों के यहाँ, तो घर गृहस्थी को चांदी का आसन मिल जाएगा।"[56]

इस प्रकार मटियानी जी की अधिकांश कहानियां आर्थिक रूप से त्रस्त, असहाय, बेरोजगार, कमजोर आदि लोगों पर हैं। इन कहानियों को पढ़ने से सहसूस होता है कि मटियानी ने उन लोगों के करीब जाकर उनकी परेशानी और काठिनायों को देखा और समझा। अर्थोपार्जन के विभिन्न स्रोतों से इनके पात्र जुड़े हैं। आर्थिक रूप से त्रस्त होने के बाद भी यहां से अधिकांश लोग नशे में लत होते हैं। कहानी 'उसी बांस का' का में 'त्रिलोक सिंह' ऐसा ही है। सब्जियां बेचने के बाद मिले पैसों से 'जुवा खेलना', 'शराब पीना', उसका पेशा है। उसकी पत्नी 'रूपली' अपने साथ-साथ अपने बच्चों के मन को भी मारकर रह जाती है, लेकिन चाहकर भी त्रिलोक सिंह की डलिया से कोई सब्जी निकाल कर बच्चों की भूख को नहीं मिटा पाती।

मटियानी अधिकतर कहानिया यह दर्शाती है कि पर्वतीय क्षेत्रों में ज्यादातर लोगों के आय का स्रोत 'कृषि' ही है। 'कला कौवा' कहानी ग्रामीण प्रधान कहानी का ही उदाहरण है। जिसके मुख्य पात्र के रूप में कुंती और उसका भाई गोपिया है। कुंती की शादी तराई भावर के मोहकम सिंह के साथ होती है तो वह अपने भाई को भी साथ ले जाने का निर्णय लेती है। तराई भावर में कृषि कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। यहां के लोग पहाड़ों में जाते है ताकि वहाँ से कर्मठ मेहनतकश लड़कियों से शादी कर लाये और वे फिर घर के कार्यो के अतिरिक्त कृषि कार्यों में भी काम करेंगी। कुंती गोपिया को साथ लाती है ताकि उसको थोड़ी मदद मिल जाएगी कामों में।

---

[55] लो तुम खा लो , शैलेश मटियानी, शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां, भाग - 4, संपादक - राकेश मटियानी, प्रकाशक - प्रकल्प प्रकाशन, मोतीलाल नेहरू नगर, प्रयागराज - 211002, पृष्ठ - 165

[56] लो तुम खा लो , शैलेश मटियानी, शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां, भाग - 4, संपादक राकेश - मटियानी, प्रकाशक प्रकल्प प्रकाशन -, मोतीलाल नेहरू नगर, प्रयागराज - 211002, पृष्ठ - 474

3.2.3 धार्मिक संघर्ष:

मटियानी उत्तराखंड की भूमि को धर्मप्राण क्षेत्र मानते थे। यहां का प्रत्येक निवासी धर्म की गहन आस्था में डूबे रहता हैं। यहां का जनजीवन, जीवन से लेकर मृत्युपर्यंत धार्मिक क्रियाकलापों से ओत-प्रेत रहता है। सहज आस्था एवं विश्वास की इस धारा पर प्रत्येक दिन कार्य का शुभारंभ कुलदेवता या ग्रामदेवता के स्मरण या पूजन से करना अपरिहार्य परंपरा है। इसलिए यहां के मेले, उत्सव, त्यौहार, संगीत, साहित्य, कला आदि सभी कुछ धर्म से पल्लवित पुष्पित एवं अनुप्राणित होते हैं। यहां के प्रत्येक वृक्ष, पत्थर, नदी पर्वत घाटी अथवा गुफा में किसी ने किसी देवी अथवा देवता का वास माना जाता है "वैसे तो यहां पर असंख्य स्थानीय देवी-देवताओं का पूजन होता है, किंतु कुल देवता देवता को अधिक मान्यता दी जाती है। आधीव्याधि निवारणार्थ यहां जादू टोना तथा तंत्र विद्या के बिगड़े रूप को भी प्राथमिकता प्राप्त है। बलि प्रथा तांत्रिक पूजा का एक अभिन्न अंग है। लोग पदार्थ, जादू-टोना, भूत-प्रेत और जागर अधिक विश्वास करते हैं।"[57] लेकिन जब अधिक मात्रा में धर्म के नाम पर केवल पूजा-पाठ या जादू-टोना पर ही समाज चलने लगे तो वह उस समाज के हितकर नहीं होता।

'चुनाव', 'घोडा', 'उत्तरापथ', 'खण्डित महादेव' आदि कहानियां धार्मिक जीवन से सम्बंधित हैं। कुमाऊँ में 'जागर' एक ऐसी परम्परा है जिसके अंतर्गत गीत संगीत के सूक्ष्म आत्मा पश्वा (जिस व्यक्ति के ऊपर सूक्ष्म आत्मा का प्रभाव होता है) को अपने प्रभाव में लेकर कंपन करने लगता है। पश्वा की अलौकिक अथवा दैवीय कम्पन इस बात के प्रमाण है कि सूक्ष्म आत्मा को उसने अपने शरीर में ले लिया है। 'लोक देवता' का देवदास परनाम भी जागर गाते हुए अपनी तन्मयता में डूब गया।

मटियानी ने धर्म के प्रति अंधविश्वास को अपने कथा साहित्य में व्यक्त किया है। पर्वतीय समाज में अनेक ऐसी मान्यताएं व्याप्त जो वहाँ के लोगों के विकास में अवरुद्ध हैं। धर्म के नाम पर पर्वतीय

---

[57] धार्मिक जीवन - उत्तरांचल : संस्कृति, लोक जीवन इतिहास एवं पुरातत्व, डॉ दिनेश चंद्र बलूनी, प्रकाश बुक डिप्पो, बरेली -2001

क्षेत्रों में बहुत रूढ़ियों एवं अंधविश्वास अंधविश्वासों पर विश्वास किया जाता है। तरह-तरह के अंधविश्वास इन क्षेत्रों में प्रचलित है-जैसे प्राय गांव में गड़तु (हाथ देखकर भविष्य बताने वाले ज्योतिष) लोग चावलों के दानों को हाथ से उछाल-उछाल कर किसी के बीमार होने अथवा किसी पर आई हुई विपत्ति का कारण देव-दोष, भूत-बाधा या छल-छिद्र वह जादू-टोना बताकर उसका परिहार झाड़-फूंक, तंत्र-मंत्र, देव-अवतार मंदिर में बलिदान करवाकर करते हैं। लोग उन्हीं की बातों पर विश्वास करते हैं और कोई अन्य उपचार नहीं करवाते। यहाँ अंधविश्वास इतना व्याप्त है कि लोग देवताओं के प्रकोप के डर से भयभीत हो उठते हैं कोई भी घटित घटना इन्हें दैवीय प्रकोप का कारण लगती है। मटियानी जी इस अंधविश्वास के कट्टर विरोधी थे।

पर्वतीय क्षेत्रों का पिछड़ने का एक प्रमुख कारण यहां पर शकुन अपशकुन संबंधी अनेक अंधविश्वासों को मानना है। यहाँ के लोग से को देवी देवताओं को मानते हैं और समय-समय पर उनकी पूजा करते हैं। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए अनेक स्थानों पर पशु बलि दी जाती है। बीमार पड़ने पर आवश्यक उपचार की अपेक्षा उसे दैवीय प्रकोप मानकर तंत्र-मंत्र, जादू, झाड़-फूंक करते हैं।

इस प्रकार मतियानी ने अपनी कहानियों के माध्यम से कुमाऊँ समाज में फैली धार्मिक कुरीतियों का खंडन किया और उन मान्यताओं को स्पष्ट करने एवं समाज में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया जो समाज के लिए हितकर हैं। धर्मांतरण की समस्या अपने विकराल रूप में उपस्थित थी जिसके मूल में आर्थिक तंगी थी। यह बात मटियानी की कहानियाँ पढ़ते हुए स्पष्ट हो जाती है। अनेक सामाजिक आडम्बरों, धार्मिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों के कारण भी उत्तराखंड की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय होती जा रही है । धार्मिक कृत्यों के नाम पर विकास का पैसा पानी की तरह बहा दिया जाता है। राजनीतिक और सामाजिक विकृतियों के कारण इस क्षेत्र का आर्थिक विकास अवरुद्ध हुवा है।

3.2.4 राजनीतिक संघर्ष :

समाज और राजनीति में बढ़ती हिंसा और गुंडागर्दी का चित्रण इनके उपन्यासों एवं कहानियों में हुआ है। इनकी कहानियाँ नगरीय प्रवेश पर आधारित शोषित, मज़दूर वर्ग की पीड़ा भरी दास्तान हैं। जो मज़दूर अपने स्वार्थ और भविष्य के प्रति मजबूरी में अपनी पत्नी के साथ होता हुआ बलात्कार देखकर भी विरोध न करता हो, और न कर सकता हो, इस तरह की घटनाओं पर समाज और तंत्र की असंवेदनशीलता और अमानवीयता का तिलमिला देने वाला अंकन यहाँ मिलता है। यहाँ पत्रकारिता तथा पुलिस के आपसी संबंध भी प्रस्तुत हुए हैं। नगरीय व ग्रामीण राजनीतिक परिवेश में राजनीतिक गुटबंदी दिखाई देती है । नगरीय परिवेश में नारी की दयनीय अवस्था को उजागर किया गया है । रोज़ नए-नए कानून, रोज़गार की बातें करने वाले नेताओं ने भी अभी तक नारी शोषण से जुड़ी समस्याओं का हल निकाला नहीं है। लेखक ने समकालीन स्थितियों का संपूर्ण राजनीतिक परिवेश पाठकों के सामने उपस्थित किया है। हरिजन समस्या, चुनाव राजनीतिक अधिकारों के विषय में खुलकर मटियानी जी ने अपने विचारों को स्पष्ट किया है। मटियानी जी देश के दल-बदलू राजनेताओं के व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए दल-बदल का भी चित्रण करते है। हमारे देश की राजनीतिक पार्टियाँ किस प्रकार से अपना रंग बदलकर गुटबंदी तैयार करती हैं, मटियानी ने उसको अपने कथा साहित्य में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है। राजनीति में चुनाव को अपना महत्वपूर्ण स्थान होता है। चुनाव में किसी को हारना पड़ता है तो किसी को जीतना पड़ता है। राजनीतिक परिदृश्य कितना परिवर्तित हो जाता है मटियानी जी ने अपने कथा साहित्य मैं उसका अंकन बख़ूबी किया है। राजनीति एवं साहित्य के घनिष्ठ संबंध को रचनाकार ने बेहिचक एवं निर्भीकता से व्यक्त किया है। देश के स्वार्थी एवं विलासी नेता भारत की ग़रीब जनता को अच्छे-अच्छे सपने दिखाते हैं। अब देश में अपना राज होगा। 'भेड़ें और गड़ेरिया' कहानी में लेखक इन वादों के बारे में कहता है- "तब ओह, मेरे प्यारे देश के लोगों। अब आप लोगों को ये टैक्स नहीं देने पड़ेंगे, जिन्हें देते-देते आप लोगों की कमर टूट गयी है। देश के धूर्त, पाखंडी, भ्रष्ट व

मक्कार नेताओं ने आज़ादी के नाम पर, ग़रीबी हटाने के नाम पर ख़ूब लाभ उठाया है। नेता 'तपन वर्धन' सूर्योदय कुटीर में रहने लगे हैं, जो कि सिर्फ़ पाँच मंजिलें की शानदार कोठी है, बाक़ी की सात मंज़िला इमारत हैं। जो आज़ादी के बाद उन्होंने बनवाई थी, जनसेवा के लिए। बाद में किराये पर उठा दी गई है। सफ़ेदपोश नेता भेड़ियों की तरह जनता का है शोषण कर रहे हैं। भोली-भाली जनता भेड़ बना दी गई है। ऊन हमेशा भेड़ों की जिस्म से उतारी जाती है, गड़ेरिया के जिस्म से नहीं।"[58] मटियानी जी की राजनीतिक कहानियों में उनके विचार खुलकर सामने आते हैं। जहाँ वे अपने समय की राजनीति पर व्यंग्य करने मे पीछे नहीं हटते। हालांकि मटियानी जी ने राजीतिक कहानियाँ कम ही लिखी हैं जैसे : 'हत्यारे', 'नाच जमूरे नाच', 'नेताजी की चुटिया' और 'वृत्ती' आदि। राजनीति का प्रपंच और चालाकी यहाँ दिखाते हैं। 'हत्यारे' कहानी में सरकार अवैध निर्माण गिराने पर तुली है और उसमे 'रामचरण ठेकेदार' की कोठी भी है। सारी जनता सरकार के इस निर्णय और घोषणा के विरुद्ध है। लिहाजा नेताओं को अपनी गोटियाँ फिट करने का मौका मिल जाता है। कहानी की एक स्त्री पात्र 'रामरती' रोते हुये कहती है-"हमारे इनको तो अकेले सरकार ही नहीं मरवाई है, बाकी इ राक्षस ससुर ठाकुर चौधरी भी मरवाये हैं।"[59] कहानी के अंत में राजनीति की यह नंगी सच्चाई रामरती के शब्दों में उतरकर जैसा करुण प्रभाव पैदा करती है, वह पाठक के हृदय को भी छलनी कर देती है। मटियानी जी की 'नाच जमूरे नाच' कहानी भी राजनीति और आम आदमी के बीच की बिडम्बना को दर्शाती है। 'गजाधर बाबू' मंत्री बन गए हैं और मंत्री बनते ही जो कुछ मंत्रियों के आस-पास चारों ओर सज जाता है, वह गजाधर बाबू के पास भी दिखाई देने लगता है। लेकिन एक छोटा-सा दृश्य नजर आता है। एक भालू नचाकर पेट पालने वाला, जिसके हाथ मे डमरू है, मंत्री जी का बेटा वही डमरू लेना चाहता है। भालू वाला उसे कोई दूसरा डमरू लाकर देने की बात करता है, क्योंकि हाथ का डमरू देना उसके लिए अपसगुन है।

[58]शैलेश मटियानी, भेड़े और गड़ेरिय, प्रकल्प प्रकाशन, हल्द्वानी, पृष्ठ -24

[59] हत्यारे,शैलेश मटियानी, कहानी संग्रह - माता तथा अन्य कहानियाँ 1993, आत्मा राम ऐंड संस, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 23

तब मंत्री जी पचास का नोट उसकी ओर फेंकेते हैं। लेकिन भालू वाला पचास का नोट वहीं छोड़कर अपने बच्चे और भालू को लेकर आगे चला जाता है। पचास का वह नोट मंत्री के मुंह पर तमाचे की तरह पड़ता है। मटियानी अपने कथा साहित्य में नीची समझी जाने वाली जातियों में राजनीतिक सक्रियता दिखाते हैं। उनकी मान्यता है कि आजादी के बाद उच्च वर्ग के लोगों ने ही सभी लाभ उठा लिए। जिसके भुक्तभोगी मटियानी जी भी थे। मटियानी जी अच्छी तरह जानते हैं कि निम्न वर्ग के लोगों को शामिल करना नेताओं की मजबूरी होती है। आज तक नेताओं की नेक नियत होती तो गरीब मजदूर जैसे कमजोर तबका भी समाज में सम्मान से गौरव महसूस करता। गरीबी से हीनता नहीं। भ्रष्टाचार व घोटाला करने वाले गौरव महसूस करते हैं जबकि गरीब अपने अभाव के कारण हीनता। शोषणवादी व्यवस्था का मटियानी जी ने हमेशा विरोध किया है।

सांप्रदायिक दंगे, हिंसा तथा धार्मिक आडंबर अवसरवादी राजनीति से मुक्ति के लिए नैतिक होना जरूरी है। नैतिक आदर्शों का राजनीतिक दलों के नेताओं में विशेष रूप से कमी है। वे अपने अनैतिक आचरण से दलों के साथ-साथ समाज को भी क्षति पहुंचाते हैं। सदियों से जिस धर्म निरपेक्षता की बात हो रही है, वह आज तक प्राप्त करना मुश्किल रहा है। सांप्रदायिक दंगे, हिंसा, धार्मिक भेदभाव मटियानी जी के कथा साहित्य में मिलता है। 'राजबली' कहानी में क्षेत्रपाल को पूजा न स्वीकार करने की चिंता है। वे कहते हैं "इसी बीच में रहते हैं पहाड़ी औरतों की इज्जत सरेआम खुद पुलिस वालों द्वारा अर्थात रक्षकों के द्वारा ही लूट ली गई। कितने मारे गए, लापता हुए लेकिन महाराज प्रधानमंत्री और महामहिम राष्ट्रपति के कानों में तेल भरे 16 घोड़ों की बग्गी पड़ी रही और वे सत्यम शिवम सुंदरम का मजा लूटते रहे।"[60] शैलेश मटियानी कहानी में कुछ समाधान तलाशते हैं। धर्मनिरपेक्ष और राष्ट्रवादी होने का आत्म गौरव के साथ सारी दुनिया में हम चलते फिरते हैं। सिर्फ हिंदू धर्म की मिसाल कायम कर सकते हैं विश्व धर्म की नहीं, मनुष्य धर्म की नहीं राष्ट्र धर्म की नहीं। भारतवर्ष की अगर कोई महान उपलब्धि होगी तो, वह हिंदू, मुसलमान

[60] शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग -4, राजबली पांडेय, संपादक राकेश मटियानी -पृष्ठ -360

और ईसाई सभी के संयुक्त प्रयत्नों के कारण हैं। भारतवर्ष में अगर कोई भी महान उपलब्धि होती है तो वह भी भारतवासी के सहयोग से ही होगी। अकेले हिंदू अकेले मुसलमानी अकेले ईसाई से नहीं। अक्सर नैतिक लोग राजनीति से दूरी बना रहे हैं क्योंकि राजनीति जिस रूप में संचालित हो रही है, वह गाली हो गई है। नैतिक पतन के कारण आम आदमी का राजनीति में प्रवेश पाना दुर्लभ हो गया है। सदाचरण, इमानदारी व नैतिकता आदि मूल्य के आधार पर जीवन का संचालन कठिन हो गया है। चोरी, अपराध, धनबल और बाहुबल का राजनीति में आने से समाज में नैतिक मूल्यों का पतन हुआ है। जिसे मटियानी जी ने कुछ कहानियों में व्यक्त किया है। 'नाच जमूरे नाच' कहानी में किसी ने यह बात फैला दी कि इस चुनाव में प्रत्येक वोट जनता पार्टी को ही पड़ना है, तो बृजवासी का संयम जवाब दे गया। "उसने आगे बढ़कर मदारी से ही सिटी छीनकर मदारी को ही तड़-तड़ पिटना शुरू किया, जब तक कि अन्य लोग उसे ठीक से मना करते तब तक तक उसने मदारी के लड़के के हाथ से डमरु भी छीन लिया।"[61] मटियानी ने अपनी रचनाओं में ढोंगी, स्वार्थी और सत्तालोलुप नेताओं की पोल खोल दी। अनेक स्थानों पर इतना शुभ संकेत किया है कि, पाठक तुरंत समझ जाते हैं। उन्होंने नेहरू की भी आलोचना की है। गांधी जी के आदर्शों को चुनौती देते हुए नेहरू परिवार की खिंचाई भी करते हैं। "आजादी के 30 साल बाद भी हम गरीब बहनों के लिए रोजी रोटी का इंतजाम नहीं कर सके। सही है कि हम मेहनत की खाते हैं मियां, दलाली की नहीं।"[62] जब भी मानवाधिकारों का हनन हुआ है उस पर मटियानी जी ने अपनी लेखनी चलाई है। मटियानी जी आपातकाल के विरोध में भी लिखते हैं। 'गौरी पण्डित' कहता है - "तुम लोगों को इंद्रा गांधी से क्या खतरा है भई? मुस रे मूस, काहे-घबराना भइया, इहरै हाथी दौड़ाना ।...भइया... आ ओ तुम अपनी बिल में मौज करो। नित समान सो कीजिए बैर, व्याह अरु

[61] शैलेश मटियानी की संपूर्ण कहानियाँ, भाग - 4, संपादक - राकेश मटियानी, प्रकाशक - प्रकल्प प्रकाशन, मोतीलाल नेहरू नगर, प्रयागराज - 211002, नाच जमूरे नाच, पृष्ठ - 106

[62] शैलेश मटियानी,बावन नदियों का संगम, परिमल प्रकाशन, प्रयागराज, पृष्ठ - 48

प्रीति।" मटियानी व्यंग्य वाण छोड़ते हुए लिखते हैं "जो अम्मा बहन की करनी है, करो मगर इमरजेंसी के खिलाफ मुँह न खोलो...तो दुकानदार के मुंह से निकल पड़ा कि साहब मीसा वालों ने दौड़ा दिया होगा इस बिचारी को।"[63]

इस प्रकार मटियानी जी सत्ता पक्ष की सभी गलत नीतियों का विरोध करते हैं। आपातकाल का विरोध इसी का प्रमाण है। वे अनेक सामाजिक समस्याओं के समाप्त न होने का कारण भी देश की इसी भ्रष्ट राजनीति को ही मानते हैं।

3.2.5 सामाजिक संघर्ष:

शैलेश मटियानी समकालीन सामाजिक जीवन के सजक कथाकर रहे हैं। वे प्रेमचंद के बाद दूसरे जन पक्षधर कथाकार साबित होते हैं। पूर्ण विराम मटियानी के कथा साहित्य को देखते हुए इन्हें दलित चेतना के कथाकार भी कहा जा सकता है। गिरिराज किशोर ने इन्हें प्रेमचंद के साथ देखा है -"प्रेमचंद अपने समय के सर्वाधिक दबे-कुचले और प्रताड़ित किसान और दलित वर्ग की पीड़ा के गायक थे, मटियानी ने उनसे भी ज्यादा गहराई में उतर कर उस वर्ग को देखा जिस पर प्रेमचंद से लेकर आज तक शायद ही कोई अपनी नजर टीका पाने में सफल हुआ हो।"[64] शैलेश मटियानी अपने समय की घटनाओं को, समस्याओं को अनुभवों के साथ जोड़कर देखा। दलित शोषितों के साथ खड़े होकर समाधान भी देते नजर आते है। शैलेश मटियानी ने अपनी कहानियों में पर्वतीय जीवन संघर्ष संबंधित अनेक सामाजिक समस्याओं को उद्घाटित किया हैं।

---

[63] शैलेश मटियानी,बावन नदियों का संगम, परिमल प्रकाशन, रायगराज, पृष्ठ -16

[64] शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां, संपादक राकेश मटियानी -, प्रकाशक प्रकल्प प्रकाशन -, मोतीलाल नेहरू नगर, प्रयागराज - 211002, आवरण पृष्ठ - 01

विवाह:

विवाह स्त्री और पुरुषों के पारिवारिक जीवन में प्रवेश करने की एक संस्था है। जैन साधु यौन संबंधों का नियमन करता है। प्राकृतिक रूप से नर नारी एक दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरे का व्यक्तित्व अपूर्ण है। पति-पत्नी के सहयोग से दाम्पत्य जीवन का संचालन होता है। तन-मन व वचन से एक स्त्री पत्नी के रूप में पति के लिए समर्पित रहती है। अपनी योग्यता, कुशलता व सेवा से दांपत्य जीवन को सुचारू रूप से ले चलती है। पत्नी परिवार की मेरुदंड होती है जिसे मटियानी जी ने अपने कथा साहित्य में दर्शाया है।

पति-पत्नी संबंध:

'अर्धांगिनी' कहानी की सूबेदारनी साहिबा ने पहली रात ही कहा था कि, "एक आंख से हम देख रहे हैं, एक से तुम। एक परांठा तो और लो, सूबेदार साहब देखिए कि हम बिना खबर हुए ही दो जनों का भोजन कर गये।"[65] ऐसा ही होता है दांपत्य जीवन, जहाँ खबर तक नहीं मिलती फिर भी काम हो जाता है। कहीं-कहीं दांपत्य जीवन को लेकर तनाव भी होता है।

स्त्री-पुरुष संबंध:

'माया सरोवर' में मिसेज खोसला सेक्स की कुंठा से पीड़ित है। वह अपने पति से पूरी तरह असंतुष्ट है और दमित वासना से पीड़ित है। वह स्वच्छंद जीवन जीना पसंद करती है। "मैं पुरुष के साथ से वंचित शादीशुदा औरत हूँ- मेरा मानसिक संसार अभी भी किसी कल्पना लोक में विचरण करने वाली अविवाहित स्त्री का सा है और इसलिए अब बढ़ती उम्र के साथ निरंतर ज्यादा तकलीफ देह

---

[65] शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां, भाग- 4, संपादक राकेश मटियानी -, प्रकाशक प्रकल्प -प्रकाशन, मोतीलाल नेहरू नगर, प्रयागराज - 211002, पृष्ठ - 86

होता है।"[66] मिसेज खोसला अपने स्त्री के पत्नी रूप से अधिक प्रेमिका रूप का महत्व देती है। इसी तरह 'कुसुमी' कहानी में कुसमी अपने पति की मृत्यु होते ही अपने देवर को पति मान लेती है और अंततः शेर मियां की बीवी बनकर उसके घर बैठ जाती है। शारीरिक सुख के लिए उसे बार-बार ऐसा करना पड़ता है। वह उसके साथ पति-पत्नी का संबंध बनाकर शारीरिक सुख प्राप्त करती है।

प्रेमी-प्रेमिका संबंध:

कुछ लोग स्त्री पुरुष विवाह संबंध से अलग प्रेम संबंध को महत्व देते हैं। कथाकार ने इन संबंधों को भी अपनी कहानियों में उद्धघाटित किया है। 'चिट्ठी के चार अक्षर' के ठाकुर प्रताप सिंह और दुर्गा में प्रेम संबंध है। जातीय दीवार भी आड़े नहीं आती। "मैं सही सलामत छुट्टियों में घर को रवाना हो जाऊंगा, तो घर पहुंचते ही एक चोट जात-बिरादरी के झूठे ढकोसले को भी मार दूंगा।"[67] इसी प्रकार 'भवरे की जात' मटियानी जी की एक अनोखी कहानी है। एक अंग्रेज से प्रेम करने वाली नायिका की कहानी है। गोबर सिंह नाई की पुत्री दुर्गा से प्रेम विवाह कर लेता है। इसी प्रकार 'भवरे की जात' भटियानी जी की एक अनोखी प्रेम कहानी है। एक अंग्रेज से प्रेम करने वाली नायिका की कहानी है। इसके प्रेम में कोई छल कपट नहीं रहता अंग्रेज साहब मैं उसे इंग्लैंड ले जाने का वादा भी कर दिया। जब उसके दफ्तर पहुंची तो "पहले उन्होंने सॉरी, एक्सक्यूजमी कहा चीणकुली ने बहुत जिद की तो व्हाट नॉनसेंस चिल्लाते हुए दो चार हंटर जड़ दिए।"[68] इस प्रकार प्रेम तो होता है, लेकिन चिर-स्थाई नहीं बन पाता। सामाजिक मान्यताएं, संस्कार, रूढ़ियां आदि छूट नहीं पाती और साथ ही प्रलोभन, आर्थिक तंगी, वासनापूर्ति आदि से जल्दी ही प्रेम कटुता, टकराहट में बदल जाता है।

---

[66] जलतरंग (माया सरोवर), शैलेश मटियानी, राजपाल एंड संस, दिल्ली, पृष्ठ - 14

[67] शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां, शैलेश मटियानी, भाग -3, संपादक राकेश मटियानी -पृष्ठ - 188

[68] शैलेश मटियानी शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियाँ : भाग -2, संपादक राकेश मटियानी -पृष्ठ - 94

अनमेल विवाह:

अनमेल विवाह एक सामाजिक कुप्रथा है। फूल सी कन्या वृद्ध पुरुष के गले मढ़ दी जाती है जिससे कि वह अपना जीवन कुंठा ग्रस्तहोकर संघर्षमय स्थितियों में व्यतीत करती है। 'शरण्य की ओर' कहानी की नायिका रामकली भी अनमेल विवाह की शिकार होती है "जो विवाह हुआ था, रामकली पंद्रह की थी, वह लगभग बत्तीस साल का।"[69] रामकली का ब्याहता रिक्शावाला बसंता है। "दो बच्चों की मां जब हुई रामकली, तब कहीं उसमें खुद के कम उम्र होने सुंदर होने का एहसास उत्पन्न हुआ और बसंता के उम्रदार।"[70] 'सुहागिनी' कहानी की पद्मावती का विवाह कुम्भ से होने के कारण 'कुंभ-विवाह' नाम दिया जाता है। जो एक प्रतीक विवाह है लेकिन उसे आजीवन अविवाहित ही रहना पड़ता है। वह संपूर्ण इच्छाओं का दमन करते हुए जीवन व्यतीत करती है। इस प्रकार बेमेल विवाह दहेज के अभाव में कन्या का विवाह अशिक्षित, वृद्ध, कुरूप, अपंग व्यक्ति के साथ ही करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में जीवन भर कष्ट उठाना पड़ता है। कभी-कभी अलग-अलग शोक सभा के कारण शादियां टूट जाती हैं। इन सभी का यथार्थ चित्रण शैलेश मटियानी ने अपनी कहानियों में किया है।

बाल-विवाह:

बाल विवाह ऐसे विवाह को कहते हैं जिसमें लड़की का विवाह रजोदर्शन से पूर्व किशोरावस्था में ही कर दिया जाता है। कानून की दृष्टि से 18 वर्ष से कम की लड़की और 21 वर्ष से कम आयु के लड़के का विवाह बाल विवाह कहलाता है। बाल विवाह समाज में एक अस्वस्थ परंपरा है। जिस का चित्रण समकालीन कथाकार कालू ने अपने कथा साहित्य में किया है। बाल विवाह का चित्र शैलेश मटियानी ने अपनी कहानियों में बखूबी किया है। 'कपिला' कहानी की

---

[69] शैलेश मटियानी,रामकली, विभा प्रकाशन, प्रयागराज,पृष्ठ - 52

[70] शैलेश मटियानी,रामकली, विभा प्रकाशन, प्रयागराज,पृष्ठ -131

नायिका कपिला एक लड़की है। जिसका किशोरावस्था में विवाह हो जाता है। युवावस्था में आने के पूर्व ही वह विधवा हो जाती है। अब उसकी पूरी जिंदगी अभिशप्त होती है। घर में सब से डर कर रहना पड़ता है। "देवरानी उससे दब-दब कर बोलती थी। मुंह से ऊंचा बोल निकल गया तो लोग यही कहेंगे, बिना सांड के रांड मुटा-मुटा के मस्त हो गयी है। जेठानी भी सुख की छाव कहाँ से देगी अंगार उगलती है।"[71] 'नाबालिग' कहानी मटियानी जी की इसी बाल विवाह का शिकार हुई नाबालिग लड़की 'आनंदी' की कहानी है, जिसमे आनंदी का पति शेर सिंह कश्मीर की लड़ाई से घायल होकर पेंसिल पर घर आता है और फिर मृत्यु को प्राप्त होता है। उससे जन्मा आनंदी का एकमात्र पुत्र भी चल बसता है। अपनी वासना पूर्ति के लिए आनंदी अपने से 10-11 वर्ष उम्र के छोटे अपने देवर को अपना लेती है। वह दीवान से कहती है "मेरे मन की क्या पूछते हो लल्ला मेरा मन तो होता है, कि धोती के फेंटे से कस कर अपनी पीठ पर रख लूं तुम्हें ,और फिर खेतों की तरफ घूमने निकल जाऊँ। मगर शर्म मार देती है कि जानने पहचानने वाले तो यही कहेंगे अरे देखो वह बेशर्म औरत अपने खसम को बांध कर पीठ पर ले जा रही है।"[30]

बहु-पत्नी प्रथा:

यह प्रथा कुमाऊँ अंचल में प्रचलित है। सामंती व्यवस्था में राजा, महाजन, जमीदार, सेठ-साहूकारों में यह प्रथा प्रचलित थी। लेकिन धीरे-धीरे जनसाधारण में भी फैलती चली गई। इस प्रथा का विरोध सभ्य समाज में हुआ है। शैलेश मटियानी इस कुप्रथा का यथार्थ चित्रण करतेहैं। 'चिट्ठी रैसन' के हौलदार सिंह दो पत्नी प्रथा को प्रसाद देते हैं। सामंत वर्ग के नाथु हौलदार सिंह विलासिता के प्रतीक हैं, हौलदार सिंह कहते हैं-"छोटी उम्र में ही पलटन में भर्ती हो गया था सारी

[71] शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग-2, कपिला, संपादक राकेश मटियानी -, प्रकाशक प्रकल्प - प्रकाशन, मोतीलाल नेहरू नगर, प्रयागराज - 211002, पृष्ठ-75

[30] तीसरा सुख, शैलेश मटियानी (नाबालिग)),प्रतिभा प्रकाशन, प्रयागराज, पृ.सं.-21

उम्र, सारी जवानी पलटन में ही कट गई।... मौसमी फसल बोने से क्या होता है?"[72] थोकदार गुमान सिंह तीन पत्नियां रखता है। इसी तरह 'अंतिम तृष्णा' कहानी में रतन सिंह अपनी पत्नी के होते हुए भी रखैल रखते हैं। "जब बाद में तीनों के बच्चों का रेहड़ संभालना पड़ता है तो और ज्यादा परेशानियां घेर लेती हैं।"[73] यह बहु-पत्नी प्रथा स्त्री-पुरुष संबंधों में तनाव पैदा करती है।

नारी-जीवन:

नारी जीवन के दो पक्ष रहे हैं। एक-रूप सौंदर्य पक्ष तथा दूसरा-गुण दोष पक्ष। पहला मूर्त है और दूसरा अमूर्त। नारी शैलेश मटियानी की कहानियों का केंद्र बिंदु रही है। मटियानी जी ने किसी न किसी पक्ष को लेकर स्त्री का रूप चित्रित किया है। स्त्री प्रेम, दया करुणा आदि गुणों से पुरुषों के आकर्षण-विकर्षण के केंद्र में सदा से रही है। कुछ स्त्रियों में क्रांति की भावना भी उठी। लेकिन उसका पता नहीं चल सका, शैलेश मटियानी ने इन सभी का यथार्थ चित्रण कहानियों में किया है। शैलेश मटियानी एक लड़की को घर से निकलने के बाद चारों तरफ चौकन्ना रहने की सलाह देते हैं लेकिन वह हमेशा डरी हुई नजर आती है। "जो शुद्ध हिंदुस्तानी लड़कियां होती हैं, वह शादी से पहले तक बिल्ली के बच्चों की तरह दुबक कर रहती है।"[74]

नारी में सहनशीलता अधिक होती है। पति के विश्वासघाती, दुराचारी होने पर समाज द्वारा उसकी निंदा की जाती है। स्त्री उसकी अनुगामिनी बनी रहती है। वह समाज से लड़ जाती है। परिवार में उसकी अर्धांगिनी की तरह सहयोग करती है और उसके सुख-दुख में उसका ख्याल रखती है। 'रुका हुआ रास्ता' की नायिका गोमती खीम सिंह की प्रेमिका होने के बाद भी पत्नी धर्म

---

[72] चिट्ठी रसैन, शैलेश मटियानी, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, पृष्ठ - 05

[73] अंतिम तृष्णा,शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियाँ - 2, संपादक राकेश मटियानी -, प्रकाशक, प्रकल्प प्रकाशन, मोतीलाल नेहरू नगर, प्रयागराज - 211002, पृष्ठ -41

[74] शैलेश मटियानी, छोटे छोटे पक्षी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ - 183

के कर्तव्यों का बखूबी निर्वहन करती है। "खेतों में काम के साथ-साथ, खीम सिंह की सेवा-टहल का सिलसिला भी चल रहा है। खाने-पीने को भी ठीक से जुटाना, टट्टी पेशाब भी ठीक समय पर निपटाना और गर्म तेल की मालिश भी करना। सवेरे आंगन में धूप खिलते ही पेट लगाकर गोमती थीम सिंह को आंगन में ले जाती है और घंटे-दो घंटे तक हाथों को जरा सा भी आराम नहीं देती- कौन जानता है, किस समय परमेश्वर को दया आ जाए और खीम सिंह का लकवाबाई उतर जाए।"[75]

शैलेश मटियानी स्त्री को पुरुष का पूरक नहीं मानते बल्कि प्रेरक मानते हैं। वे मानते हैं कि स्त्री को पुरुष का पूजक नहीं, प्रेरक होना चाहिए। पूजक किस्म की औरतें पति को मूर्ति की तरह रखना चाहती है और उसे कोई ऐसा जोखिम नहीं उठाने देना चाहती, जिससे वह आगे बढ़ सके। उसके कब्जे में बना रहे यही उसके लिए काफी है। 'चौथी मुट्ठी' की कौशिला विद्रोहिणी नारी है, जो स्वतंत्र व्यक्तित्व का परिचय देती है। वह इस अमानवीय प्रथा के विरुद्ध विद्रोह करती है। अपने पति के लिए प्रार्थना करती है। कथा में दोनों नायिका कौशीला तथा मोतिया पति द्वारा त्याग दिए जाने तथा ससुराल व सौत के अत्याचार से पीड़ित है। न्याय के लिए स्थानीय गोलू देवता के ऊपर अक्षत आक्रोश में फेंकती है। "हे परमेश्वर! जिस सौत रंडी ने आते ही मेरा खसम मुझसे छीन लिया उस नरुली रंडी का तो सत्यानाश करना।"[76] इसी विषय मे 'क्षितिज शर्मा' लिखते हैं-"स्त्री यहाँ अपनी अस्मिता और सामाजिक स्थिति को खोजती दिखाई देती है। उसके स्वतंत्र विकास और चिंतन में आर्थिक पस्थितियां जबरदस्त अवरोधक हैं। आर्थिक परिस्थितियाँ पुरुष के सामने भी हैं। लेकिन उसकी पुरुष होने की स्वतंत्रता और सामाजिक व्यवस्था में निर्णायक भूमिका एक हद तक

---

[75] शैलेश मटियानी,शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां -1, संपादक राकेश मटियानी -पृष्ठ - 340 - 341
[76] चौथी मुट्ठी, शैलेश मटियानी, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, पृष्ठ -164

उसके आत्म सम्मान को बचा ले जाती है। स्त्री को परंपरा और संस्कारों ने सामाजिक रूप से बांध रखा है। उसकी क्रियाकलापों पर पर इसका असर है।"[77]

निम्न वर्ग :

निम्न और उपेक्षित वर्ग शैलेश मटियानी की कहानियों में हमेशा प्रमुखता पाता रहा है। लापरवाह से दिखने वाले इन लोगों में जीवन के प्रति अथाह आस्था है। अनैतिक कहे जाने वाले कार्यों में उनका लिप्त होना, कानून की भाषा में भले ही अवैध और असभ्य कहलाते हों, उनके सामने जो हालात रख दिये जाते हैं उन परिस्थियों में उनके लिए ऐसा करना कतई अस्वाभाविक नहीं है, क्योंकि उनके सामने विकल्प बचा ही नहीं है। उनकी ऐसी लिप्तता किसी भी तरह व्यवस्थित जिंदगी पा लेने की सोच का हिस्सा है। 'रहमतुल्ला', 'भविष्य', 'मिट्टी', 'प्यासा', 'वृत्ति', 'चील' जैसी कितनी ही कहानियाँ है जो तथाकथित सामान्य और सभ्य जिंदगी के समानांतर, उनसे होड़ लेती, मानवीय मूल्यों को अछूता दर्शन दिखाती, निरंतर संघर्ष करते लोगों की जीवन से भरी पड़ी है। दरअसल मटियानी जी की जमीन वही थी जहां से वे निकल भागे थे। यानी वंचितों की संघर्ष भरी दुनिया। 'राजेन्द्र यादव' इसी विषय मे लिखते हैं "यहाँ मुझे फुटपाथों और यातनाओं से उठे हुए तीन लेखकों का अनायास ही ध्यान आ रहा है। 'गोर्की', 'जैकलंदन', और 'ज्यां जेने', मुंबई की जिस जिंदगी का मटियानी जी बार-बार जिक्र करते हैं, इन तीनों लेखकों के विश्वविद्यालय भी वही थे। उन्हीं 'निचली गहराइयों' ने 'गोर्की' को संघबद्धता की तरह वैचारिक ऊर्जा दी जहाँ वह संघर्षशील मानवता के मंत्रदृष्टा बनकर उभरे। असमानता, सामाजिक अन्याय शोषण के विरुद्ध लड़ाई, विषमता और अमानवीयता से जूझते हुए लोग और 'माँ' जैसा उपन्यास दिया। इस यातना और संघर्ष से जुड़कर शायद मटियानी भी दूसरे 'गोर्की' हो सकते थे, 'हावर्ड फास्ट' या 'स्टीन बैक'

---

[77] शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियाँ, संपादक - राकेश मटियानी - भूमिका से शिखर से सागर तक - फैली कहानियाँ, क्षितिज शर्मा, पृष्ठ -19,

हो सकते थे। वे 'जैक लंदन' की तरह जंगलों और समुद्रों के भेड़ियों, बाघों, लुटेरों और जल-दस्युओं के खिलाफ अपराजेय जिजीविषा की लोम- हर्षक कहानियाँ लिख सकते थे।"[78]

बदलते सामाजिक मूल्य:

शैलेश मटियानी की कहानियों में सामाजिक जीवन का बहुआयामी चित्रण हुआ है। इसमें अमीर-गरीब, मध्यवर्गीय समाज के पारिवारिक, आर्थिक, वैवाहिक संघर्ष देखे जा सकते हैं। उनमें परंपरागत मूल्यों के परिवर्तन होने के साथ नए मूल्यों की स्थापना दिखाई देती है। इनकी कहानियों में स्त्री भूखी-नंगी रहकर भी पुरुष के संघर्ष में हाथ बटाने को तैयार खड़ी दिखाई देती है। 'कपिला' कहानी की नायिका बात-बात पर घुंघट को गले तक तान लेती है। वहीं पति की मृत्यु के बाद कप्पू घोड़ियानी के नाम से प्रसिद्ध हो जाती है। सास-ससुर व देवरों के भरण-पोषण का दायित्व स्वयं वहन करती है। "एक दिन हल्द्वानी मंडी में एक पठान पहाड़ी लड़की की गर्दन दबोच रहा था। कपूर ने उसे छुड़वाया।"[79] बाद में पता लगा कि वह गंगोलीहाट का रहने वाला एक लावारिस लड़का है। उसका नाम ध्यान सिंह है। कप्पू घोड़ीयानी ने उसे पति रूप में स्वीकार कर एक नए मूल्य की स्थापना की साहस का परिचय दिया। साथ में सास-ससुर और देवरों की जिम्मेदारी भी निभाती रही। 'चिट्ठी के चार अक्षर' का प्रताप सिंह नाई की पुत्री दुर्गा को अपनाकर उपेक्षित को सम्मान देता है। जात-विरादरी के परंपरागत मूल्यों को तोड़ता है। वह दुर्गा मंदिर में दीपक जलाती है तो प्रार्थना करती है-"उस बेशर्म को सुखी रखना प्रभु।"[80]

---

[78] शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियाँ, भाग -1, संपादक - राकेश मटियानी -भूमिका : शैलेश मटियानी - आस्था और संघर्ष, राजेन्द्र यादव, पृष्ठ -

[79] शैलेश मटियानी,शैलेश शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां -2, संपादक - राकेश मटियानी, पृष्ठ – 75

[80] शैलेश मटियानी, शैलेश शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां - 2, संपादक - राकेश मटियानी, पृष्ठ - 186

शैलेश मटियानी की पर्वतीय जीवन संबंधित कहानियों में आदमी ही सर्वोपरि है। यहाँ जाति, वर्ग और धर्म गौण हो जाते हैं। उनके वहाँ दलित, मुस्लिम, पिछड़े उपेक्षित और आर्थिक विषमता से ग्रस्त चरित्र की भरमार हैं। उनके बीच के संबंध मानवीय और परपीड़ा को आत्मसात कर उसको अपने में और अपने को उनमें समा लेने की तत्परता है। "वर्ग चेतना का सही अर्थ शैलेश मटियानी की कहानियों से ही समझा जा सकता है। चरित्रों में व्यक्तिगत चिंताओं के साथ-साथ वर्ग के सरोकारों को भी उतना ही महत्व देते दिखाई देते हैं। वर्ग की चेतना जाति और धर्म को बहुत नीचे दबा देती है। वह कहानी की केंद्र वस्तु और उसे प्रभावित करने वाले तत्व के रूप में कभी प्रभावी नहीं हो पाते।"[81] 'दो दुखों का एक सुख' कहानी की गरीब पहाड़ी स्त्री मृदुला, सूरदास और कमरिया किस जाति-धर्म वर्ग के हैं पता ही नहीं चलता । उनकी एक ही जाती है- भिखारी। भिक्षावृत्ति उनका व्यवसाय है, तो व्यवसाय हित की रक्षा उन्हें कभी-कभी आत्मकेंद्रित भी कर देती है। लेकिन दृष्टि एक है-जीवन को विकसित होते देखना। उसका माध्यम है मृदुला। मृदुला जीवन और भविष्य दोनों का प्रतीक बन जाती है। आशावान प्रतीक का ही फल है कि सूरदास और कमरिया के बीच का व्यावसायिक और व्यक्तिगत प्राप्ति का द्वंद एक मानवीय आधार पा जाता है। कमरिया कोड़ी को कर्बला वालों की पकड़ से बचाने के लिए सूरदास और मृदुला उसे कोठरी में छुपा देते हैं। स्वाभाविक है कि उसके पालन-पोषण का जिम्मा भी अब उन्हीं का है।

3.2.6 भौगोलिक संघर्ष:

कुमाऊँ के पर्वत, नदियाँ, खान-खलिहान और लहलाते खेत मटियानी जी कभी नहीं भूल पाए। इस अंचल विशेष की अनेक खट्टी-मीठी यादों को कथाकार ने अपनी रचनाओं में संजोया है। मटियानी जी को अपना कुमाऊँ अंचल बेहद प्रिय था जिसे वे कभी भी नहीं छोड़ना चाहते थे। लेकिन जीवन की अनेक विषम परिस्थितियों ने उन्हें अपनी ही मिट्टी से दूर होने को मजबूर किया।

[81] शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां,भाग -4, संपादक - राकेश मटियानी, पृष्ठ -29

कभी-कभी लगता है शायद इन पर्वतों की भौगोलिक स्थिति अगर कुछ अच्छी होती तो शायद यहाँ जीवन मोह लेता। गांव के गांव खाली हो चुके हैं । और जो लोग वहां रह गए हैं वो लगातार संघर्ष करते रहते हैं भौगोलिक परिस्थितियों से। मटियानी जी की अनेक रचनाओं को इन्हीं भौगोलिक काठिनायों के आधार पर रचित हैं। उनकी कहानियों में वो दर्द मौजूद है जो अपनी मिट्टी को त्यागने का होता है। न चाहकर भी अपनी जन्मभूमि, मातृभूमि से दूर होने का दर्द उनकी रचनाओं में मौजूद है। पर्वत अपने साथ अनेक भौगोलिक विशेषताओं को लिए होते हैं लेकिन इसके साथ-साथ ये अनेक तरह की काठिनायों को खुद में ही घेरे रहते हैं। जिसका दर्द वहां पर बसी जनता को झेलना पड़ता है। भौगोलिक परिस्थितियों के परिणाम आज पर्वत के गांवों में से एक-एक घर खाली हो चुका है। अपने घर, खेत, नदी सब कुछ छोड़ कर ये लोग मैदानों की ओर रुख करने के किये मजबूर हैं। दो वक्त की रोटी और जीवन की छोटी से छोटी मूलभूत जरूरतों को पूरा करने के लिए इनको न जाने क्या क्या काम करने पड़ते हैं। यहां तक कि चोरी, डकैती, भीख मांगना और होटलों में बर्तन माँजना इत्यादि। स्वयम मटियानी जी जब पहाड़ छोड़ के आये तो उन्होंने कई दिनों तक एक छोटे से होटल में बर्तन धोने का काम किया।

बेरोजगारी एक बहुत बड़ी समस्या उभर कर इन पहाडी लोगों के सामने खड़ी है, जिसके परिणामस्वरूप इनको अपना सब कुछ त्यागना पड़ता है। 'गिरिराज किशोर' इसी संदर्भ में लिखते हैं "पहाड़ों की उन कोटरों में बहुत से गरीब परिवारों का बेसहारापन नहीं समा पाता तो वे मैदान में आ जाते हैं। यह तथ्य किसी भी संवेदनशील व्यक्ति की भावनाओं को उकेरने वाला साबित हो सकता है। खास तौर से उस व्यक्ति को जो उस उस अंचल से जन्मजात जुड़ा हो।"[82]

मटियानी जी की एक कहानी है 'एक शब्दहीन नदी' जिसका पात्र नौकरी की तलाश में गांव से निकल आता है और जब कोई नौकरी नहीं मिलती तो जाड़े के दिनों में चौकीदारी करता है। अपने घर वालों से अपनी वास्तविकता को छिपाता है। ठंडे फर्श पर बैठ अपनी रातें काटता है।

---

[82] शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां -2, मटियानी की कहानियांजख्मों की पहचान :, गिरिराज किशोर पृष्ठ -28

बेरोजगारी एक ऐसी समस्या बन जाती है जिसके चलते युवा असामाजिक तत्वों में शामिल हो जाते है न चाहते हुए भी वो अपना पेट भरने हेतु ऐसे कार्य करते है जो उनके लिए और समाज के लिए उचित नहीं होते मटियानी जी की कहानी 'प्यास' जिसका पात्र 'शंकर' जिंदगी के अभाव और अंतहीन तकलीफों ने आखिर अपराध की दुनिया में धकेलकर जेबकतरा बना दिया। अब जेबकतरा होने का मतलब ही एक गाली है। लेकिन जेबकतरा बनने के बाद भी उसे हवालातों की पिटाई और अंतहीन यातनाओं से मुक्ति कहाँ है!

बेरोजगारी के चलते लोग अत्यधिक मात्रा में पलायन कर रहे हैं जिसके कारण गाँव के गाँव खाली हो चुके हैं। नजारा तो यह देखने को मिलता है कि एक घर मे एक या दो बूढ़े माता-पिता रह रहे हैं क्योंकि वो अपनी मिट्टी, अपने घर जिसे उन्होंने अपने खून पसीने से बनाया था उसे त्यागने को तैयार नहीं हैं। मटियानी जी की रचनाओं में अधिकतर उपन्यासों में भौगोलिक परिस्थितियों के कारण हो रहे पलायन के दर्द को झेलने के दंश मौजूद है। 'बोरीवली से बोरीबंदर' उपन्यास इसी का साक्षी है। 'शेखर जोशी' इसी दर्द को बयां करते है और लिखते हैं "जीवन की विपरीत परिस्थितियों के कारण जिनको अपनी माटी से बिछुड़ना पड़ता है, जिनके लिए अपनी दुद्बोली के शब्द और अश्रुत हो जाते हैं, उन्हें उस बोली-वाणी के लिए कैसी ललक है यह वही समझ सकता है जिसने ऐसी परिस्थितियों का अनुभव किया हो। शैलेश मटियानी की रचनाओं का परिवेश ही नहीं उनकी भाषा में स्थानीय शब्दों, मुहावरों की छौक प्रवासी मन के लिए एक विशेष अर्थ रखती थी। मैं इन रचनाओं का ऐसा ही उत्सुक पाठक था, जिसे बचपन में अपनी जन्मभूमि कुर्मांचल से विस्थापित होना पड़ा था।"[83]

[83] जैसा मैंने उन्हें जाना - समझा, शेखर जोशी,पृष्ठ -119

3.2.7 देश-प्रेम और राष्ट्रीय भावना:

मटियानी जी की कहानियों में देश-प्रेम व राष्ट्रीय भावना दृष्टिगोचर होती हैं। 'भेड़े और गड़रिये', 'अपनी-अपनी परंपरा', 'चिट्ठी के चार अक्षर', 'हलकू हालदार', 'उसने नहीं कहा था', 'बर्फी की चट्टाने', 'लोक देवता', 'सीने में धसी आवाज' आदि कहानियाँ है, जिनमें देश-प्रेम और राष्ट्रीय भावना की झलक मिलती हैं। ‘भेड़ और गड़रिये’ शीर्षक कहानी में मां, बहन, पत्नियों के जेवर चंदे देते हुए नारे लगाए जाते हैं-"भारत माता की जय।"[84] इसी प्रकार 'अपनी-अपनी परंपरा' कहानी में मटियानी जी देश के सैनिकों का जज्बा प्रकट करते हैं-"भारत की धरती का अन्न हमने बहुत खाया है, गंगा, जमुना मैया का अमृत हमने पिया है। अपने देश के अन्न-जल से विश्वासघात हम नहीं कर सकते।"[85] 'चिट्ठी के चार अक्षर' कहानी में लेखक ने एक फौजी के साहस का उल्लेख किया है-"मैं समझ गया हूं अब कि भलाई पीठ दिखाकर पलायन करने में नहीं बल्कि छाती पर चोट देने को तैयार रहने में है।"[86] पहाड़ के जीवन पर लिखी मटियानी की बहुत सारी कहानियाँ ऐसी है जिनमें राष्ट्र प्रेम का संदेश सीधे-सीधे भी आ गया है। "मटियानी जी उसे अपनी कहानी में इस खूबसूरती से गूँथ देते हैं कि कहानी की संश्लिष्ट रचना में बिलाकर वह कहानी का अविभाज्य हिस्सा लगता है। और ये कहानियाँ सीधे-सीधे समय संदेशवाची या प्रचारात्मा कहानियाँ कहीं नहीं लगती। इन कहानियों को पढ़कर प्रेमचंद की वे कहानियाँ अनायास याद आ जाती है, जिनमें स्वाधीनता संग्राम की खुलकर अभिव्यक्ति हुई है। प्रेमचंद की वे कहानियाँ उनकी श्रेष्ठ कलात्मक कहानियाँ भले ही न हो, लेकिन उनके समय की आवाज है, जिसे अपने शब्दों में ढालना किसी

---

[84]‘भेड़ें और गड़ेरिये’ शैलेश मटियानी, शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां,भाग -3, संपादक- राकेश मटियानी,
पृष्ठ - 226

[85]'अपनी अपनी परंपरा -’ शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां, भाग-3, संपादक- राकेश मटियानी -पृष्ठ-208

[86] ‘चिट्ठी के चार अक्षर’ शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां, भाग-3, संपादक- राकेश मटियानी -पृष्ठ - 188

भी लेखक का पहला और जरूरी काम होता है।"[87] गरीबी, बेरोजगारी और निर्धनता पर्वतीय जीवन की सबसे बड़ी समस्याओं में से एक हैं । साधनों की कमी के चलते शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाना फिर नौकरी की तलाश में दर-दर की ठोकरें खाना, वहाँ के प्रत्येक युवा के जीवन का अभिन्न और कड़वा हिस्सा बन जाता है। ऐसी स्थिति में उनके समक्ष रोजगार का केवल एक ही उपाय होता है खुशी-खुशी 'फौज में भर्ती हो जाना'। लेकिन इन नौजवानों का जीवन कम कष्टदायी नहीं होता। 'प्रकाश मनु' आगे इसी विषय में लिखते हैं- "मटियानी जी ने फौजियों को लेकर बहुत सी कहानियाँ लिखी हैं। एक दर्जन से भी अधिक इनमें दारिद्रय की गहरी पीड़ा और कसक है कि बार-बार आंखें भीगती हैं। एक मार्मिक तथ्य है कि जब आप पहाड़ को छूते हैं तो जैसे लोक संस्कृति की गूंज को अनसुना नहीं कर सकते वैसे ही आधुनिक जिंदगी की इस देन को। देश की रक्षा का संकल्प करके लोग सीमा पर जाते हैं। कुछ इसलिए भी कि गरीबी उन्हें धकेलती है। गांव में रहकर करें भी तो क्या करे जहां करने, खाने के लिए कुछ बचा ही नहीं। यह सैनिक तो जो झेलते हैं, वह झेलते ही हैं, लेकिन उनके पीछे पत्नी, बच्चे और परिवार को जो कुछ झेलना पड़ता है, वह एक 'अकथ कथा' है।"[88]

इसी तरह देश प्रेम और राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत मतियानी जी की एक कहानी 'लोकदेवता' है। कहानी का नाम लोकदेवता है। मगर यह लोकदेवता कोई मिट्टी की प्रतिमा नहीं है। यह लोकदेवता थोकदार बलभद्र सिंह का वह आदमकद रूप ही है जो चीन के आक्रमण के समय पूरे गाँव के आसपास के इलाके में देशभक्ति और जागृति की लहर पैदा करता है। हवाओं में मानो उसके वीरतापूर्ण उद्‌गार समाएं हों। गांवों में जहां पहले नौजवान फौज़ में भर्ती होने से बचते थे, वहीं बलभद्र सिंह के उद्‌गार ने उनके भीतर ऐसा जोश जगाया कि हर घर का एक बेटा पलटन में नजर

---

[87] शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां,भाग -5, संपादक राकेश मटियानी - (भूमिका- शैलेश मटियानी) की कहानियाँ, ठेठ हिन्दुस्तानी कहानी का जुगराफिया) प्रकाश मनु, पृष्ठ -5

[88] शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियां,भाग -5, संपादक राकेश मटियानी -ठेठ हिन्दुस्तानी कहानी का जुगराफिया) प्रकाश मनु, पृष्ठ - 18

आने लगा। बलभद्र सिंह के ये शब्द किसी के भी भीतर अपने देश के लिए लड़ने का जोश भर दे "सुनो रे मेरे जवान छोकरों! ये अपनी खून भरी आंखें मुझ बूढ़े को क्या तरेरते हो- जाओ रणक्षेत्र में और दुश्मन की फौज को दिखाओ और उनका संहार करके धरती माता का उद्धार करो...! तुम लोगों ने दिखा दिया अपने इन पितरों के ही जैसा पुरुष पराक्रम तो आने वाली पीढ़ियों की संतानें तुम्हें देवताओं के रूप में पूजेंगी और आज जैसे इस गांव की धरती में महाबली पितर लोक देवता 'हरु राजा' की वीर गाथा गाई जा रही है। एक दिन इसी इसी गांव की धरती भूमि में तुम्हारी संतानें तुम्हारी वीरगाथा गा-गाकर तुम्हें पूजेंगी और तुम्हें उत्तराखंड के देव चोला प्राप्त होगा। और यदि कायर बनकर गांव में पड़े रहोगे तो तुम्हारी गाथा तो गाने को बाकी रहेंगी नहीं, तन की मिट्टी विशेष नहीं रहेगी।"[89] 'सीने में धसी आवाज' की कमला सूबेदारनी में भी मानो 'लोकदेवता' के बलभद्र सिंह जैसी इस्पाती आत्मा आकर विराज हो गयी हो। वह अपने पति के युद्ध में शहीद होने पर अपने बेटे को भी युद्धक्षेत्र के लिए तैयार करती है, ताकि वह अपने पिता का बदला ले सके दुश्मनों से और अपनी वीर परम्परा को आगे बढ़ाए। जब एक स्त्री जो कि कमला की पड़ोसन है, आकर पुत्र के सहीद होने का भय दिखती है तो कमला सूबेदारनी के शब्दों में मानो गीता का तेज और सच्ची क्षत्राणी का-सा साहस छलछला उठता है।

3.3 पर्वतीय रचनाकार एवं शैलेश मटियानी की विशिष्टता:

शेखर जोशी

शेखर जोशी के व्यक्तित्व में व्यापकता और गहराई दोनों ही हैं। उनकी यह व्यापकता और गहराई उनकी कहानियों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। इन कहानियों के माध्यम से शेखर जोशी ने समाज की अनेक समस्याओं को उजागर किया हैं। वह बेहद ही सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। शेखर जोशी का ग्रामीण परिवेश अपार प्राकृतिक सौंदर्य लिए हुए गीत-संगीत और सांस्कृतिक

[89] शैलेश मटियानी, लोक देवता

गतिविधियों में समृद्ध कुमाऊँ था, जहां वही उनके चारों ओर गरीबी और मानवीय शोषण का जाल भी फैला हुआ था, जिसे कोई भी संवेदनशील व्यक्ति अनदेखा नहीं कर सकता। शेखर जोशी को उनके जीवन की एक विषम परिस्थितियों ने छोटी उम्र में ही विभिन्न भौगोलिक और सामाजिक परिवेश में जीने के लिए विवश किया। छोटी उम्र में ही मातृविहीन हो जाने के कारण अपनी जन्मभूमि कुमाऊँ अंचल को त्याग कर वनस्पतिहीन शुष्क प्रदेश राजस्थान में विस्थापित होने का कटु अनुभव और अपनी मातृभूमि से कट जाने का दर्द उन्हें जीवनपर्यंत रहा। जिसे उन्होने अपनी कहानियों में उतारा। 'अमरकांत' जी उनके विषय में कहते हैं "जिस तरह हिमालय शानदार ऊँचाई के बावजूद अपने विनम्र झुकाव में पंजाब, बंगाल, बीच में मैदान सबको जोड़ता है वैसे ही हैं हमारे कहानीकार मित्र शेखर जोशी।"[90] जिस प्रकार शैलेश मटियानी की रचनात्मकता के दो छोर रहे 'कुमाऊँ' और 'बम्बई' उसी प्रकार शेखर जोशी के भी दो छोर रहे एक तो कुमाऊँ का पर्वतीय क्षेत्र और दूसरा कारखानों की 'बदबू' या शहर की मैली-कुचली जिंदगी! जिस आत्मीयता से मटियानी जी ने अपनी कहानियों के नायक गरीब, शोषित, दलित, किसान, मजदूर तथा आमजन को बनाते है, उसी प्रकार शेखर जोशी भी अपनी रचनाओं में समाज में सामान्य समझे जाने वाले व्यक्ति को उठा कर नायक का दर्जा देते हैं।

शेखर जोशी अपनी जन्मभूमि से गहराई से जुड़े हैं पहाड़ों के प्रति उनका विशेष लगाव है। इनका परिवार पहाड़ के एक छोटे भू-स्वामियों का परिवार रहा। पर्वतीय जीवन इनको बहुत प्रिय है। खेतों में सामूहिक गीतों के लिए पर्वतीय अंचल विख्यात है। गोढ़ाई-धान रोपाई के दिनों में खेतों में माहौल किसी त्यौहार से कम नहीं रहता। चीड़ के वनों में सांय-सांय के बीच कहीं दूर ग्वालों के गीतों का स्वर किसी को भी मोहित कर देता है एक उदहारण देखें- "धार में देवी को थाना दूध लै नवाओ...।"[91] प्रत्युत्तर में सुनाई देता है-"तेरो जुठो मैं नी खाई सुवा माया लै खवायौ।"[92] इस

---

[90] पत्रिका - भारतीय लेखक,अंक - जनवरी - मार्च , वर्ष - 2003, पृष्ठ - 25

[91] डांगरी वाले, शेखर जोशी, आधार प्रकाशन, 372 -सेक्टर -17, पंचकूला, हरियाणा, पृष्ठ -09

[92] डांगरी वाले, शेखर जोशी, आधार प्रकाशन, 372 -सेक्टर -17, पंचकूला, हरियाणा, पृष्ठ -09

संगीतमय ग्रामीण वातावरण के प्रति शेखर जोशी को बेहद लगाव था, जिससे प्रेरित होकर उन्होंने कुमाऊँ अंचल को आधार बना कर अनेक रचनाएँ की। जैसे - 'दाज्यू', 'डांगरे वाले', 'हलवाहा', 'मेरा पहाड़', 'कोसी का घटवार', 'साथ के लोग' इत्यादि।

शेखर जोशी का बचपन पहाड़ों में ही बीता। उनका पैतृक गांव औलिया, अल्मोड़ा जनपद में जो बड़े-बड़े पहाड़ों प्राकृतिक सौंदर्य से समृद्ध था। पहाड़ों की अपनी संस्कृति और लोकाचार होते हैं। मांगलिक कार्यक्रमों में विधि विधान से पूजा अर्चना और अनुष्ठानों की रौनक देखते ही बनती है। होली, दीपावली, मकर संक्रांति, लोहड़ी, रक्षाबंधन आदि त्योहारों पर पहाड़ी ग्रामीण वातावरण संगीतमय हो उठता है। शेखर जोशी की कहानियों में पहाड़ी संस्कृति की झलक देखने को मिलती हैं।

शेखर जोशी को अपनी मातृभूमि से बेहद लगाव है जिसे उन्होंने स्वयं व्यक्त किया है- "जीवन की परिस्थितियों ने छोटी उम्र में ही मुझे विभिन्न भौगोलिक और सामाजिक परिवेश में जीने के लिए विवश किया है। छोटी उम्र में मात्रविहीन हो जाने के बाद पर्वतीय अंचल के प्राकृतिक सौंदर्य से वनस्पतिविहीन राजस्थान में विस्थापित कर दिए जाने का दुखद अनुभव और अपने परिचित परिवेश से कट जाने की कष्टप्रद अनुभूतियों ने मेरी संवेदना की धार तेज कर दी।"[93] यही कारण है कि उनकी अनेक रचनाओं में कुमाऊँ का पर्वतीय क्षेत्र पूर्ण रूप से निकल कर आता है। इसी संदर्भ में मार्कंडेय लिखते हैं - "शेखर जोशी एक जगह से तो चल पड़े है, लेकिन दूसरी जगह अब भी परदेसी बने खड़े हैं और वह भी खाली हाथ नहीं, इस गलतफहमी में कि वह जीवन की वास्तविकता का भारी क्रास अपनी पीठ पर हो रहे हैं लेकिन उन पर बार दूसरा ही है और वह है मध्यवर्गीय संस्कारों का जो उन्होंने तो मजदूर बनने देता है आप उन्हें प्रत्यावर्ती करके अपने ही

[93] डांगरी वाले, शेखर जोशी, आधार प्रकाशन, 372 सेक्टर -17, पंचकूला हरियाणा, मेरा लेखन मेरा परिवेश, पृष्ठ -10

भीतर ले पाता है।"[94] शेखर जोशी ने अपनी रचनाओं में औधोगिक जगत में गरीब मजदूरों पर हो रहे अत्याचारों का चित्रण किया है 'बदबू' कहानी इसी का उदाहरण है।

मटियानी जी ने शेखर जोशी की कहानियों के संदर्भ में लिखा है हिंदी की अविस्मरणीय कहानियों की बात उठने पर शेखर जोशी का नाम जैसे अनायास ही स्मरण हो आता है। शेखर जोशी की कहानियों का प्रभाव केले के फूल के अंदर फस गई जल की तरह मन पर से उतरता नहीं है अपने रचनात्मक संवेदन की तरह अप्रतिम करुणास्पर्ध के कारण शेखर की कहानी की लगातार प्रतीक्षा जैसे एक लाचारी बन जाती है।"[95]

हिमांशु जोशी

समकालीन हिंदी साहित्य में हिमांशु जोशी एक महत्वपूर्ण रचनाकार है। उन्होंने समकालीन हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं पर लेखन कार्य किया हैं। उन्होंने मुख्य मुख्य रूप से उपन्यास, कहानी, रेखाचित्र, यात्रावृत्त आदि विधाओं पर लेखन कार्य किया है, किंतु समकालीन हिंदी साहित्य में हिमांशु जोशी कथाकार के रूप में प्रसिद्ध हो चुके हैं। जिनमें- 'अरण्य', 'कगार की आग', 'छाया मत छूना मन', 'तुम्हारे लिए', 'समय साक्षी है', और 'महासागर', है। इनकी लगभग 150 कहानियां प्रकाशित हो चुकी है। और समय-समय पर प्रकाशित सभी कहानियां- 'अब अंत तथा अन्य कहानियां', 'जलती हुई डैने तथा अन्य कहानियां, 'तपस्या तथा अन्य कहानियां', और 'मनुष्य चिन्ह तथा अन्य कहानियां' संग्रहों में संग्रहित हो चुकी है। हिमांशु जोशी मूलतः कुमाऊँ अंचल से संबंध रखने वाले हिंदी कथाकार हैं। इनका जन्म और प्रारंभिक शिक्षा कुमाऊँ अंचल में हुई थी। किंतु उनकी आजीविका पत्रकारिता ही रही। अपनी आजीविका के इस

---

[94] कहानी की बात, मार्कंडेय, लोकभारती प्रकाशन, 15 ए महात्मा जी मार्ग, प्रयागराज, पृष्ठ - 26

[95] विकल्प हिंदी पत्रिका, संपादक (कथा साहित्य विशेषांक) शैलेश मटियानी -, प्रकाशित वर्ष -1969, नेहरू नगर प्रयागराज, पृष्ठ -45

पेशे के लिए वह हमेशा नगर एवं महानगरों में रहे हैं। इनके कथा साहित्य की वस्तु में व्यापकता आई है। क्योंकि इनके उपन्यास एवं कहानियां कुमाऊँ की ग्रामीण एवं कस्बाई जीवन को चित्रित होने का अवसर देती है। वही उसमें नगरीय और महानगरीय जीवन का भी चित्रण हुआ है। उल्लेखनीय है कि इनके साहित्य में कुमाऊँ के शिक्षित से लेकर अशिक्षित, उच्च, मध्यम, और निम्न वर्ग के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के सभी चित्रों का मिला जुला रूप प्रस्तुत हुआ हैं।

शैलेश मटियानी की तरह हिमांशु जोशी ने भी अपने पर्वतीय अंचल को आधार बनाकर अनेक कहानियां लिखी। जैसे- 'कोई एक मसीहा', 'रथ चक्र', 'उसका तारा', 'नंगे पांव के निशान', 'देखे हुए दिन', 'हरे सूरज का देश', 'रास्ता रुक गया', 'सीमा से कुछ और आगे', 'मनुष्य चिन्ह' और 'अपने ही कस्बे में' आदि महत्वपूर्ण कहानियां हैं। इन्होंने एक साथ सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक स्थितियों का चित्रण किया हैं । कुमाऊँ का वातावरण अपने रूप में में व्यक्त हुआ है।
इनकी आंचलिक कथा रचनाओं में निम्न मध्यवर्गीय नारी चरित्र सर्वाधिक चित्रित हुई हुई है। मटियानी जी की रचनाओं में भी नारी के विभन्न रूप चित्रित हुए हैं। लेकिन एक ओर जहां हिमांशु जोशी की नारी पात्र समाज-व्यवस्था से दबी कुचली और तरह-तरह के कष्टों को झेलती नजर आती है वही दूसरी ओर मटियानी जी की स्त्री पात्र सभी प्रकार की अमानवीय व्यवस्थाओं का घोर विरोध करती है, विरोध ही नहीं वह उनको समाज से जड़ से मिटाने का दमखम रखती है।

मनोहर श्याम जोशी

मनोहर श्याम जोशी का जन्म एक मध्यमवर्गीय साहित्य एवं कलानुरागी कुमाऊँ परिवार में हुवा था। मनोहर श्याम जोशी ने विविध विधाओं में अपना लेखन कार्य किया हैं। मनोहर श्याम जोशी एक पत्रकार, स्तंभकार, सम्पादक तथा साहित्कार की हैसियत से समाज से जुड़े हुए थे।

उन्होंने जहां समाज के उच्च मूल्यों को देखा-परखा, वही समाज में व्याप्त अनैतिक मूल्यों, भ्रष्टाचार, अलगाव एवं दुर्व्यवहार से भी परिचित हुए।

मनोहर श्याम जोशी की धर्म मे विशेष आस्था थी। हिन्दू धर्म के सभी कर्मकांड, पूजा, व्रत, विधि-विधान, त्यौहार, उत्सव, शादी-ब्याह के सारे रीति-रिवाजों से वे भली-भांति परिचित थे। उन्हें दुख इस बात का था कि आज हम अपने संस्कारों को पीछे छोड़ते जा रहे हैं वे लिखते हैं "पुराणों और वेदों के मुख्य तत्व से भारतीय जनमानस दूर होते जा रहा है। वह अपनी सभ्यता, संस्कृति धर्मग्रंथों को निर्रथक कहकर पाश्चात्य साहित्य एवं जगत की जीवन दृष्टियों को अपना रहा है।"[96] इसी प्रकार उनकी एक रचना है 'टा टा प्रोफेसर' जिसमें प्रोफेसर षष्ठीबल्लभ पंत अपने बेटे को हिंदी या संस्कृत भाषा मे नहीं बल्कि अंग्रेजी भाषा मे पारंगत करना चाहते हैं। उनकी नजर में अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों की भाषा है वह इस बात को गर्व से कहते हैं।

मनोहर श्याम जोशी धर्म के प्रति आस्थावान होते हुए भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि भारतीय समाज में धर्म के नाम पर शोषण होता रहा है। पंडे, पुरोहित, साधु-संतु धर्म के नाम पर जो भ्रांत धारणाएं बनाई हैं उन पर भारतीय समाज आंख मूंद कर विश्वास कर रहा है। कहीं वे धर्म के नाम पर राजनीति करते हैं तो कहीं स्वार्थ सिद्धि। 'कुरु-कुरु स्वाहा' उपन्यास में एक पात्र 'मनोहर' एक बीमार व्यक्ति की पूजा करवाने जाता है उसमे भी वह साधारण सी पूजा जानता है और मंत्र भी उसे कंठस्थ नहीं हैं। इस प्रकार धर्म अपने मूल रूप से अलग हो गया है। अवांछनीय तत्वों ने भारतीय धर्म में प्रवेश पाकर अनेक विकृतियां ला दी हैं।

मनोहर श्याम जोशी की रचनाओं की अधिकांश पृष्ठभूमि पर्वतीय रही है। जैसे 'कसप', 'क्याप'। कसप उनकी बेहद लोकप्रिय कृति है जिसमें पहाड़ की संस्कृति को बहुत बारीकी से चित्रित किया गया है। कुमाऊँनी में कसप का अर्थ है 'क्या जाने'। मनोहर श्यामजोशी का कुरु-कुरु स्वाहा 'एनो मीनिंग सूँ ?' का सवाल लेकर आया था, वहाँ कसप जवाब के तौर पर 'क्या जाने' की स्वीकृति

---

[96] 21वी सदी,मनोहर श्याम जोशी, पृष्ठ -30

लेकर प्रस्तुत हुआ। किशोर प्रेम की नितांत सुपरिचित और सुमधुर कहानी को कसप में एक वृद्ध प्रध्यापक किसी अन्य (कदाचित नायिका के संस्कृतज्ञ पिता) की संस्कृति कादम्बरी के आधार पर प्रस्तुत कर रहा है।

कसप लिखते हुए मनोहर श्याम जोशी के आंचलिक कथाकारों वाला तेवर अपनाते हुए कुमाऊँनी हिन्दी में कुमाऊँनी जीवन का जीवन्त चित्र आँका है। एक प्रकार से मध्यवर्ग ही इस उपन्यास का मुख्य पात्र है। इसी वजह से कसप में कथावाचक की पंडिताऊ शैली के बावजूद एक अन्य ख्यात परवर्ती हिन्दी प्रेमाख्यान गुनाहों का देवता जैसी सरसता, भावुकता और गजब की पठनीयता भी है। पाठक को बहा ले जाने वाले उसके कथा प्रवाह का रहस्य लेखक के अनुसार यह है कि उसने इसे चालीस दिन की लगातार शूटिंग में पूरा किया है।

शिवानी (गौरा पंत)

वर्तमान युग की कथा लेखिकाओं में एक बहुचर्चित लोकप्रिय लेखिका है। शिवानी ने अपनी रचनाओं में अपने अंचल को पूर्ण रूप से प्रस्तुत किया हैं। उनके समकालीन शायद ही कुछेक लेखिकायें होंगी जिन्होंने अपनी रचनाओं में आंचलिक स्पर्श और रंग देने का प्रयत्न किया हो। गिने चुने ही नाम ज़ेहन में आते है जैसे- 'कृष्णा सोबती', शिवानी की रचनाओं में पहाड़ी जीवन का खुलकर वर्णन मिलता है। कुमाऊँनी अंचल के लोक-जीवन का परिचय इनकी रचनाओं में मिलता है। कुमाऊँनी वासी होने के कारण पहाड़ों से इनका विशेष लगाव था। शिवानी की रचनाओं के अधिकतर कथानायक पहाड़ों से ही लिए गए हैं। वह स्वयं लिखती हैं "कुमाऊँ की वनस्थली का अनुपम रूप आज भी मेरी कलम की स्याही उठाता रहता है। लंबे चीड़, देवदार और अयार के वृक्षों से लटकते ओस की मोती समान बूंदों की लटकन टप-टप बिखर कर हमें भिगो देते हैं। लौटते तो गिरजे की घंटियां बज रही होती है। पता नहीं ऐसी कौन सी मिठास है इन घंटियों मे

जो, मुझे अन्य कहीं नहीं मिलती। अल्मोड़ा का सरल, स्निग्ध सौंदर्य घंटे की मिठास में घुल मिल गया है।"[97]

शिवानी ने अपनी रचनाओं में कुमाऊँ के पर्वतीय समाज का चित्रण किया है, 'चौदह फेरे' में बसंती के विवाह के माध्यम से लेखिका ने पहाड़ में विवाह संबंधी रीति-रिवाजों का वर्णन किया है। विवाह शादियों में समधियों को गालियां देने की प्रथा होती है। लेखिका ने इन गालियों को मनोरंजक बताया है।

सामाजिक रीति रिवाजों के अतिरिक्त धार्मिक विश्वासों का भी शिवानी ने अपनी रचनाओं में बखूबी वर्णन किया हैं। जैसे-माना जाता है कि पंचकों में अगर किसी की मृत्यु हो जाती है, तो उसके पश्चात न जाने कितनी मौतें और हो जाएं! इस विश्वास को लेखिका ने अंधविश्वास नहीं माना 'चौदह फेरे' में कर्नल के पितामह की मृत्यु पंचक में होती है। कुछ दिनों बाद कर्नल के पिता और माता की भी मृत्यु हो जाती है। कई जगहों पर शिवानी ने रूढ़ियों को तोड़ने का प्रयत्न किया है लेकिन पूरी तरह से सफल नहीं हो पाई हैं।

शिवानी ने पहाडों की अनेक समस्याओं को अपनी रचनाओं में उधृत किया हैं जैसे- 'अंतर्जातीय विवाह' पहाड़ों में अंतर्जातीय विवाह कतई मंजूर नहीं होता यदि कोई ऐसा कर लेता है तो उसे बिरादरी से बाहर कर दिया जाता है। 'दो स्मृति चिन्ह' कहानी इसका उदाहरण है।

शिवानी की लेखन कला एवं रचनात्मक की प्रशंसा करते हुए 'हजारी प्रसाद द्वेवेदी' लिखते हैं "गौरा शांतिनिकेतन की छोटी सी मुन्नी मेरी परम प्रिय बहन और छात्रा बचपन से ही बड़ी सूक्ष्म बुद्धि की थी। उसकी बुद्धि बड़ी ही पैनी थी। मेरे पारसी मित्र पं. निताई विनोद रस्तोगी और गोरा के दूसरे अध्यापक कहां करते थे कि यह लड़की अवसर मिलने पर बहुत प्रतिभाशाली सिद्ध होगी। वे गौरा की भाषा और प्रकाशन भंगिमा को तभी बहुत दाद देते थे।"[98] शिवानी की रचनाओं में कहीं

---

[97] शिवानी, चौदह फेरे ,पृष्ठ - 10

[98] मेरी प्रिय कहानियां भूमिका से, हजारी प्रसाद द्ववेदी,

भी निम्न वर्ग और निम्न मध्य वर्ग मौजूद नहीं है। इन्होंने अपनी कृतियों में पर्वतीय समाज का चित्रण तो किया ही है साथ मे पर्वतों से दूर महानगरों में रह रहे लोगों के रहन-सहन, खान-पान, एवं उनके स्वतन्त्र विचारों का भी वर्णन किया हैं। भुखमरी, गरीबी जैसी समस्याएं कहीं भी नहीं दिखती। एक ओर मटियानी जी की रचनाओं का कथ्य ही आरंभ होता है गरीबी और भुखमरी से झुझते हुए समाज को लेकर, वहीं दूसरी ओर शिवानी की रचनाओं में स्वादिष्ट भोजन, और बहुमूल्य गहने कपड़े पाठक की आंखों में एक अलग किस्म की चमक पैदा करते हैं। मटियानी जी की भी अनेक रचनाओं की नायिका स्त्री ही है और शिवानी की भी अधिकतर रचनाऐं नायिका प्रधान ही हैं। लेकिन दोनों की स्त्री पात्र में जमीन-आसमान का अंतर हैं। मटियानी जी की स्त्री पूरे घर को संभालने के साथ - साथ बाहर के भी सारे कामों को पूरा करती है। वह एक कर्मठ नारी है। लेकिन शिवानी ने नारियों को कोमल और श्रद्धामयी दिखाया है। ये नारियाँ अपने अधिकारों के लिए जरा भी विद्रोह नहीं करती बल्कि परिस्थितियों के सामने घुटने टेक देती हैं। 'शायद' कहानी की 'कुसुम' 'लाल हवेली' की 'ताहिरा' एवं 'शर्त' की 'रमा'। ये नारियां अपने अधिकारों की मांग कर सकती थी लेकिन नहीं करती। मटियानी जी की विशिष्ठता यही पर दिखती है जब उनकी नारी पात्र समाज की बनाई गयी हर उस प्रथा का विरोध करती है जो उसके हित के लिए न हो।

शिवानी की नारियाँ बेहद खूबरसूरत हैं। उनके सौंदर्य के सामने किसी और का सौंदर्य टिक नहीं पाता।

शिवानी की रचनाओं में एक विशेषता जो अन्य किसी रचनाकार की रचनाओं में कमतर ही देखने को मिलती है खासकर स्त्री रचनाकारों में जैसे कि, शिवानी ने पुरुष पात्रों को केवल लंपट, धूर्त, पलायनवादी ही दिखाकर उनके प्रति अन्याय नहीं किया, बल्कि पुरुषों के उज्ज्वल पक्ष को भी चित्रित किया है। 'मसीहा' कहानी का नायक इसका उदाहरण है।

सुमित्रानंदन पंत

सुमित्रानंदन पंत का जन्म 20 मई 1900 को अल्मोड़ा से 32 कि. मी. दूर प्रकृति की गोद 'कौसानी' नामक गाँव में हुआ। बीसवीं शताब्दी के भारतीय अंतस् और मानस को समझने के लिए महाकवि पंत के वृहद रचनाकोश को जानना बहुत आवश्यक है। वीणा, ग्रंथि, पल्लव, गुंजन, ज्योत्स्ना, ग्राम्या, युगांत, उत्तरा, अतिमा, चिदंबरा (भारतीय ज्ञानपीठ से सम्मानित) कला और बूढ़ा चाँद (साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत) तथा लोकायतन छायावादी चतुष्टय के कवियों के बीच सुमित्रानंदन पंत का रचना-काल सर्वाधिक विस्तृत था। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ वर्ष (20 मई, 1900 ई.) में जन्मे पंत जी पंद्रह-सोलह साल की उम्र से सन् 1915-16 से अपने मृत्यु वर्ष (28 दिसम्बर, 1977) तक लिखते रहे। इस तरह साहित्य-सर्जना के क्षेत्र में ये लगभग छह दशकों तक सक्रिय रहे।पंत जी की समस्त रचनाएँ भारतीय जीवन की समृद्ध सांस्कृतिक चेतना से गहन साक्षात्कार कराती हैं। कविवर पंत जी पर अपने जीवन काल में युगीन परिस्थितियों, अनेक साहित्यकारों, एवं महापुरुषों का प्रभाव पड़ा। सबसे पहला प्रभाव 'प्रकृति' का पड़ा। इनकी प्रकृति-कविताओं की कालोत्तीर्ण विशेषता को, जिसका आधार कौसानी के पर्वत, कत्यूर की घाटी, हिमालय और उसके प्रांतर का सौंदर्य है। पंत जी ने सन् 1972 ई. में संकलित- संपादित अपनी उत्कृष्ट प्रकृति कविताओं के संग्रह गंधवीथी के ‘दो शब्द’ में प्रकृति संबंधी अपनी मुख्य मान्यता को सूत्ररूप में व्यक्त करते हुए लिखा था-‘‘प्रकृति एक ही है। मैं प्रारंभ में उसके बाह्य रूप पर, वानस्पतिक जगत के सौन्दर्य पर मुग्ध हुआ था और उसी से प्रेरणा ग्रहण कर मैंने प्रकृति-काव्य की रचना की थी। आगे चलकर मुझे प्रकृति के आंतरिक रूप पर भी दृष्टि मिली, जो मनुष्य तथा मनुष्य-जीवन में अधिक पूर्णता से अभिव्यक्त हुआ है। यदि सौन्दर्य-काव्य में रूप-सौन्दर्य को प्रधनाता मिली है, तो मेरे चेतना-काव्य में भाव-सौन्दर्य का निरीक्षण-परीक्षण करने का प्रयत्न हुआ है, जिसके गहरे मूल मानव-सभ्यता तथा संस्कृति के इतिहास में फैले हुए हैं।’’[99] हिमालय के

[99] गंधवीथी, सुमित्रानंदन पंत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1973

सौंदर्य को चित्रित करने के लिए कभी उसके प्रत्येक उपकरण को निहारता है उसकी शोभा का पान करता है फूलों से नदी पर्वत घाटी के चित्रों को ही लीजिए कभी कल्पना इतनी सुंदर है इसकी एक झलक इस कविता में देखने को मिलती है :

"सजल मौन मुकुल में बरसा अर्ध निमीलित चितवन,
फूलों के अंगों की अप्सरी-सी रंग प्रिय यौवन उड़ती पर्वत घाटी,
मौसम परिंदों में रोमांचित"[100]

इलाचंद्र जोशी

सन् 1902 में अल्मोड़ा के एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण परिवार में जन्मे श्री इलाचन्द्र जोशी हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यास लेखन के प्रणेता थे। इनकी नियमित शिक्षा तो नहीं हो सकी लेकिन जोशी जी हिंदी, संस्कृत और बांगला के विद्वान थे। अंग्रेजी और फ्रेंच के अलावा भी कई विदेशी भाषाओं के जानकार थे। कवि के रूप में साहित्यिक जीवन प्रारम्भ करके इलाचंद्र जोशी जल्दी ही गद्य-क्षेत्र में प्रवेश कर गए और उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की विशेषता के साथ अपने समय के श्रेष्ठ उपन्यासकार सिद्ध हुए।आजीवन साहित्य-कर्म में व्यस्त रह कर आपने 81 वर्ष का जीवन जिया और 1983 में दिवंगत हुए।

कृतियाँ :

उपन्यास : मणिमाला, संन्यासी, पर्दे की रानी, प्रेत और छाया, निर्वासित, मुक्तिपथ, सुबह के भूले, जिप्सी, जहाज का पंछी, त्याग का भोग।

कहानी : धूपरेखा, दीवाली और होली, रोमांटिक छाया, आहुति, खँडहर की आत्माएँ, डायरी के नीरस पृष्ठ, कटीले फूल लजीले काँटे।

---

[100] ग्रंथावली, सुमित्रानंदन पंत,भाग -04 आतिमा, पृष्ठ -408

समालोचना तथा निबंध : साहित्य सर्जना, विवेचना, विश्लेषण, साहित्य चिंतन, शरत-व्यक्ति और कलाकार, रविंद्रनाथ, देखा-परखा!

उत्तराखंड की पावन भूमि पर जन्में होने के कारण वहां के प्राकृतिक वातावरण का इनके चिन्तन पर गहरा प्रभाव पड़ा। पर्वतीय जीवन विशेषकर वनस्पतियों से आच्छादित अल्मोड़ा और उसके आस-पास के पर्वत शिखरों ने और हिमालय के जलप्रपातों एवं घाटियों ने, झीलों और नदियों ने इनकी काव्यात्मक संवेदना को सदा जागृत रखा।

मृणाल पांडे

मृणाल पांडे हिंदी साहित्य में चर्चित एवं प्रतिष्ठित नाम है, पत्रकार एवं भारतीय टेलीविज़न की जानी मानी हस्ती मृणाल पांडे को साहित्य अनुराग विरासत में अपनी माँ 'शिवानी' (गौरा पंत) से मिला जो स्वयं हिंदी कथा साहित्य में एक प्रखर कथाकार रहीं। मृणाल पांडे हिंदी साहित्य की नहीं बल्कि भारतीय छात्र की अमूल्य धरोहर हैं। उनका जीवन साधारण होते हुए भी असाधारण है उनका जीवन साधारण होते हुए भी असाधारण है स्वयं अपने जीवन और अनुभव जगत से ही उनका समग्र साहित्य उपजा प्रतीत होता है। मृणाल पांडेय ने समाज के विशाल वर्ग को विषय वस्तु बनाकर कहानियों के माध्यम से पाठक वर्ग के सम्मुख रखा। उन्होंने समाज की अनेक समस्याओं का विविध आयामों में चित्रण करते हुए मनुष्य के भयावह और त्रासद यथार्थ को उकेरा है, जिसके कारण व्यक्ति की जीवन जीने की स्थितियां बद से बदतर होती जा रही है। मृणाल पांडे ने युग चेतना को अपनी रचनाओं में प्रखर वाणी दी है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से समकालीन चिंतन को सुंदर अभिव्यक्ति दी है। जो उनकी रचनाओं में व्यक्तिगत सत्य है वही समाज का सत्य बनकर उभरा है। इनके पात्र गरीबी, बेरोजगारी, सांप्रदायिकता, संकुचित रीति-रिवाजों, अंधविश्वासों, भ्रष्ट नेताओं, व्यवस्था की क्रूरता, नौकरशाही, पुलिस भ्रष्टाचार शोषण

अन्याय आदि को सहन करते तथा साथ-साथ संघर्ष करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। मृणाल जी जहां नारी मन की पीड़ा को महसूस करती हैं, वही नारी जीवन की कई समस्याओं को उठा कर उनका समाधान भी प्रस्तुत करती हैं। उन्होंने प्राचीन रूढ़ियों, मान्यताओं के स्थान पर नारी को मुक्ति के स्वर प्रदान किए हैं। मृणाल पांडेय ने अपनी रचनाओं में अनेक पात्र पर्वतीय पृष्ठभूमि से लिये उनकी रचनाओं के शीर्षक भी पहाड़ी परिवेश को ध्वनित करते हैं। जैसे - 'पटरंगपुरण', 'बचुली चौकीदारिन',

'पटरंगपुराण' उनकी कृति जो पहाड़ी कस्बे की गाथा प्रस्तुत करता है। पर्वतीय अंचल कुमाऊँ-गढ़वाल का पहाड़ी क्षेत्र है। इसके केंद्र में पटरंगपुर नाम का गांव है। यह ग्यारह पीढ़ियों की कहानी है। ग्यारह पीढ़ियों में पहाड़ी जीवन में होने वाले परिवर्तन का चित्रण इसमें है। इस परिवर्तन में केवल जीवन शैली नहीं, बल्कि आर्थिक,सामाजिक एवं राजनीतिक स्थितियां भी प्रभावित होती हैं। इसमें पहाड़ का पूरा जीवन अपनी ठेठ लोक-संस्कृति के साथ आंखों के आगे साकार हो उठता है। अंधविश्वासों का वर्णन इसमें किया गया है जैसे "सुना, सीढ़ी पर खड़ी होकर सिर धोती थी इतने लंबे तो बाल ही थे उसके। वैसे अच्छा जो क्या होते हैं कमर के नीचे लंबे बाल? दुखी जीवन होता है ऐसी औरत का। सीतामाई के भी कमर से लंबे बाल थे। ठहरा ही लक्ष्मी का जीवन भी दुखमय ठहरा।"[101]

पत्रकारिता के क्षेत्र में या संपादक के रूप में उनकी महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं- 'बंद गलियों के विरुद्ध', 'बोलता लिहाफ' और 'स्त्री : एक लंबा सफर'।

[101] पटरंगपुराण, मृणाल पांडे, पृष्ठ -17

मंगलेश डबराल

मंगलेश डबराल समकालीन हिन्दी कवियों में सबसे चर्चित नाम हैं। जन्म 16 मई 1948 को टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड में हुआ। शिक्षा-दीक्षा देहरादून में हुई। 1983 में जनसत्ता में साहित्य संपादक बने। कुछ समय 'सहारा समय' में संपादन कार्य करने के बाद आजकल वे 'नेशनल बुक ट्रस्ट' से जुड़े हैं ।मंगलेश डबराल के 5 काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'पहाड़ पर लालटेन', 'घर का रास्ता', 'हम जो देखते हैं', 'आवाज भी एक जगह' है और 'नये युग में शत्रु'। इसके अतिरिक्त इनके दो गद्य संग्रह 'लेखक की रोटी' और 'कवि का अकेलापन' के साथ ही एक यात्रावृत्त 'एक बार आयोवा' भी प्रकाशित हो चुके हैं।

मंगलेश डबराल की काव्ययात्रा विशेष रूप में सामाजिक यथार्थता से ही शुरू होती है। किसी भी साहित्यकार की साहित्य सामाजिक यथार्थ से असंपृक्त और अप्रभावित नहीं रह सकता। बेकारी, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता आदि का चित्रण आज की कविता में खूब देखने को मिलता है। समकालीन हिन्दी कवियों ने ग्राम्य जीवन के यथार्थ चित्रण के साथ ही साथ नागरिक जीवन के विभिन्न अंगों, रूपों और विद्रूपताओं एवं विसंगतियों का भी विस्तृत अभिव्यक्ति दी है। शोषित वर्ग के बाद समाज के सबसे बडा वर्ग मध्यवर्ग है। यह मध्यवर्ग वर्तमान पूँजीवादी समाज व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग है जो शोषकों और शोषितों के बीच त्रिशंकू की तरह स्थित है, यह यथार्थ चित्रण डबराल की कविता में देख सकते हैं। डबराल की कविता में साधारण जनता की दुख-दर्द, बेचैनी, पूँजीवादी विसंगतियाँ, निम्न तथा मध्यवर्गीय जीवन की तमाम सच्चाइयाँ आदि आते हैं। उन्होंने उन विसंगतियों पर घातक प्रहार तथा समाज सुधार का सार्थक प्रयास भी किया है। उनकी अधिकांश रचनायें समाज की सच्चाइयों और यथार्थ से भरा हुआ है। उनके काव्य की मुख्य चिंता है कि भूख और तडप से मनुष्य के अन्दर व्यवस्था के विरुद्ध जो गुर्राहट उभरनी चाहिए वह मंद क्यों हो जाती है। वास्तव में लोग अंधेरे में हाँफते हुए ही चुपचाप चले जाते हैं, औरतें डरी डरी अपना डर छुपाती निकल जाती हैं। उनकी रचनायें अपने अनुभव पर आधारित होने के कारण

उनमें जीवंतता झलकती है। उन्होंने जीवन के अनुभव को ही अर्थात कटुसत्य को निर्दयता के साथ निर्भय होकर सामाजिक व्यवस्था का चित्रण किया है। मंगलेश समाज का अत्याचार, अन्याय, कुंठा, शोषण, हिंसात्मक कृत्य, बाज़ारवाद आदि का चित्रण समाज के सम्मुख रखते हैं। आज समाज काफी बदल चुका है। पूरी दुनिया में बाज़ारवाद हावी है, जहाँ मनुष्य का न सम्मान है, न उसके रिश्तों का। इन सभी बातें पर खेद करने हुए कवि एसी परिस्थितियों पर नितांत चिंतन-मनन करते हुए समस्या का समाधान ढूँढने का प्रयास और साथ ही समाज को जगाने का प्रयत्न भी करते हैं।

विद्यासागर नौटियाल

विद्यासागर नौटियाल का सम्पूर्ण साहित्य पहाड़ को समर्पित है, उनका साहित्य प्रासांगिकता के साथ-साथ प्रेरणादायी भी है। उनके साहित्य में उनके अनुभव और उनका अध्ययन साफ झलकता। 20 सितम्बर 1933 को टिहरी के मालीदेवल गाँव में जन्में नौटियाल 13 साल की उम्र में शहीद 'नागेन्द्र सकलानी' से प्रभावित होकर सामंत विरोधी प्रजामण्डल से जुड़ गए। रियासत ने उन्हें टिहरी के आजाद होने तक जेल में रखा। 'वन आन्दोलन', 'चिपको आन्दोलन' के साथ वे 'टिहरी बाँध' विरोधी आन्दोलन में भी सक्रिय रहे। नौटियाल 1980 में देवप्रयाग से उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्य रहे। वे संवेदना के कथाकार थे, जिसे उनके साहित्य में स्पष्ट महसूस किया जा सकता है। उनकी कलम हमेशा शोषण व असमानता के खिलाफ चली और यही उनका स्वभाव भी था। उन्होंने पहाड़ की नारी और पहाड़ की अनेक समस्याओं को लेकर अपनी रचनाएं की है जैसे कि, नौटियाल जी की 'घास' नामक कहानी में नारी पात्रा 'रूपसा' का जिस प्रकार शोषण होता है, वह पूरे भारतीय समाज को शर्मशार करने वाली घटना है। कहानी में विकट परिस्थितियों से जूझती पर्वतीय स्त्री की अक्षुण्ण जिजीविषा छिपी है। जीवित रहने के लिए

दुर्दांत, भीषण कष्ट सहते जाना विद्यमान व्यवस्था के अन्तर्गत उसकी नियति बन चुका है। सहते जाने की इस स्थिति का खिंचाव उस आखिरी बिंदु तक उसे ला देता है, जहाँ तीन प्राणियों की जिन्दगी की डोर या पतरोल की कमर से बंधी डोर में से उसे एक को चुनना है। फट जा पंचधार नामक कहानी भी एक दुखियारी शूद्रा 'रख्खी' नामक महिला के शोषण एवं अत्याचार की कहानी है, जिसे एक नौजवान ठाकुर 'वीर सिंह' ने जबरदस्ती, एक झूठे कर्ज के कारण अपनी रखेल बना रखा है । वह वर्षों से उसका यौवन सुख लूटता रहा और बाद में बिरादरी के दबाव में आकर उसे गाँव से बेदखल कर दिया। वे जीवन के अन्तिम क्षणों में एक गुफा में केवल इसलिए जीवित पड़ी है कि वह चाहती है- भूकम्प का झटका आए, तगड़ा भूचाल और इस पहाड़ का जोड़-जोड़ हिल उठे। पंचधार खंड-खंड हो जाए. प्रस्तुत कहानियाँ 'घास' तथा 'फट जा पंचधार' में 'विद्यासागर नौटियाल' ने 'रूपसा' और 'रख्खी' के शोषण का तथा पहाड़ के जन-जीवन और समाज का जो चित्रण प्रस्तुत किया है, वह आज भी प्रत्येक भारतीय समाज में देखने को मिलता है। बहुत सी स्त्रियाँ आज भी शोषण और अत्याचार का शिकार होने को मजबूर है। वह चाहकर भी अपने ऊपर हुए अत्याचार का विरोध नहीं कर पा रही है। वह पहाड़ों पर बसने वाले लोगों की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं से भली-भाँति परिचित थे। पहाड़ों में घूम-घूमकर क्रान्ति की अलख जगाने वाले सुप्रसिद्ध साहित्यकार थे। उनके रोम-रोम में पहाड़, उसके निवासी तथा उनके दुख-दर्द बसते थे। उन्होंने पहाड़ के लोगों का, उनकी गरीबी का, उनकी पीड़ाओं का, उन पर सरकारी, गैर-सरकारी लोगों द्वारा किए गए अत्याचारों का तथा शोषण का सूक्ष्म अध्ययन किया था। स्वयं नौटियाल ने भी इन्हीं तमाम कठिनाइयों का एक योद्धा की तरह डटकर मुकाबला किया था। वे सच्चे कलम के सिपाही थे। उनका जीवन संघर्षों का दस्तावेज था। प्रकाश मनु इस संदर्भ में लिखते हैं "टिहरी रियासत के समस्त शिविरों, घाटियों, गांवों का कई-कई बार भ्रमण किया। नौटियाल के पास जीवन के विपुल अनुभवों की कमी इसलिए भी नहीं

है क्योंकि ले लगातार जन-संघर्षों में भागीदारी करते रहे हैं।"[102] उनकी समस्त रचनाओं में पहाड़ का यह संघर्ष नजर आता है उनकी रचनाएं 'स्वर्ग दद्दा! पाणि, पाणि', 'यमुना के बागी बेटे', 'भीम अकेला', 'झुंड से बिछड़ा हुआ' 'सूरज सबका है', 'उत्तर बांया है' आदि। नौटियाल जी की अद्भुत लेखकीय क्षमता का परिणाम है कि पहाड़ की लोक-कथा से शुरु हुआ 'स्वर्ग दद्दा! पाणि, पाणि' पर्यावरण की चिन्ता को लेकर आज भी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपन्यास बन जाता है। सूरज सबका है ऐतिहासिक कृति से अधिक लोक मानस की कृति है।

पंकज बिष्ट

पंकज बिष्ट हिन्दी कथा साहित्य में प्रमुख पत्रकार, कहानीकार, उपन्यासकार और समालोचक हैं। पंकज बिष्ट मूलतः उत्तराखंड में अल्मोड़ा जिल्ले के नौगाव गाव के रहने वाले है। इनकी प्रमुख रचनाएँ : 'लेकिन दरवाजा', 'उस चिड़िया का नाम' और 'पंख वाली नाव' हैं।

'लेकिन दरवाजा' उपन्यास में 1960 के दौर के साहित्यकारों और कलाकारों के व्यक्तिगत और आंतरिक जीवन एवं साहित्यिक चिंताओं का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में उस दौर के साहित्य एवं कला के क्षेत्र में चर्चित अनेक देशी-विदेशी हस्तियों का उल्लेख हैं। इस उपन्यास के विषय में डॉ रामचन्द्र तिवारी पंकज बिष्ट के लिए लिखते हैं-"ऐसा लगता है कि उपन्यासकार उस युग कि व्यक्तिवादी सोच एवं दायित्वहीन जीवन-शैली से आश्वस्त नहीं है, किन्तु वह उसके प्रतिपक्ष में कोई स्वस्थ और विधेयात्मक विकल्प भी प्रस्तुत नहीं कर सका है। 'उस

[102] https://www.pustak.org/index.php/books/bookdetails/5721) 'भारतीय साहित्य संग्रह, भारतीय सहित्य का अद्वितीय संकलन

चिड़िया का नाम' मूलतः पहाड़ी जीवन की करूण गाथा। इस उपन्यास की एक पात्र 'पार्वती' जो पूरे पर्वतान्चल की एक नारी का प्रतीक है, ऐसी नारी जो शोषित और पीड़ित है।"[103]

उपन्यास, कथा कहानी के अतिरिक्त पंकज बिष्ट ने संचार माध्यम और पत्रकारिता पर अनेक आलेख लिखे। वर्तमान में वे दिल्ली से प्रकासित 'समयान्तर' नामक हिन्दी साहित्य की मासिक पत्रिका का सम्पादन और संचालन कर रहे हैं।

इस प्रकार उत्तराखंड के पावन धरती पर अनेक महान विभूतियों ने जन्म लिया है, जिन्होंने ने न केवल देश का नाम पर देवभूमि उत्तराखंड का नाम भी गौरव से ऊँचा किया है। यह वही धरती है जहाँ पर अनेक कवि साहित्यकार भी पैदा हुए है, जैसे सुमित्रा नंदन पन्त, शैलेश मटियानी, इलाचंद्र जोशी, गौरा पंत (शिवानी), मंगलेश डबराल, वीरेन डंगवाल, हिमांशु जोशी, शेखर जोशी, मनोहर श्याम जोशी, लीलाधर जगूड़ी, पंकज बिष्ट, गोविंद बल्लभ पंत', और पंकज बिष्ट आदि।

इन सभी रचनाकारों ने कुछ न कुछ पहाड़ी जीवन की खूबसूरती और बदसूरती के ऊपर लिखा है, जिस से कि पहाड़ की खूबसूरती और साथ में उन खूबसूरत पहाड़ों के पीछे छुपी दर्दनाक सच्चाई सामने आती है। हिंदी साहित्य में पहाड़ों के दर्द को विषय बना कर रचनाएं कम ही कि गयी हैं मैदानी क्षत्रों की तुलना में। लेकिन जितनी भी हमारे समक्ष मौजूद है वे सभी पहाड़ के एक-एक चित्र को प्रस्तुत कर देती है। फिर वो मनोहर श्याम जोशी का 'कसप' हो जहां चंचल किस्म के प्रेम से हम परिचित होते या फिर मटियानी जी का 'बोरीबली से बोरीबंदर' हो जहाँ पलायन की मार झेल रहे एक युवा से हम मिलते है। इन समस्त पर्वतीय रचनाकारों की तुलना में शैलेश मटियानी ने पहाड़ी अंचल को अधिक चित्रित किया है अपनी रचनात्मकता में। मटियानी इसी संदर्भ में विशेष नज़र आते हैं क्योंकि उन्होंने अपनी रचनात्मकता का आरंभ ही किया है पहाड़ के दर्द को बयां

[103] हिन्दी का गद्य साहित्य, डॉ॰रामचंद्रा तिवारी,विश्वविद्दालय प्रकाशन, वाराणसी एकादश संस्करण : 2016, पृष्ठ 297

करते हुए और अंत भी किया है पहाड़ के दर्द को समेटते हुए। मटियानी का सम्पूर्ण कथा-साहित्य पहाड़ के तमाम संघर्षों को बयां करता है। उन्होंने अपनी भूमि को कभी नहीं छोड़ा सदैव वे उसके दर्द को पकड़े रहे और उस दर्द को अपनी रचनाओं में स्थान देते रहे।

उपसंहार

उपसंहार

इस लघु शोध में मटियानी जी की सम्पूर्ण कहानियों की समग्र पड़ताल तो संभव नहीं है, लेकिन मटियानी जी की कहानियों की उस जमीन, उस चट्टान और झाड़-झंखाडों को जरूर जान सकते हैं, जहाँ से गुजरते हुए उनके पैर लहूलुहान हुए, मगर जीवन का रस कहीं सूखा नहीं। शायद इसलिए कुमाऊँनी परिवेश की कहानियाँ लिखने में उनका मन और अधिक रमता है। शैलेश मटियानी ने पहाड़ के दर्द को जाना है और उसे अनेक तरह से अभिव्यक्त किया है, कि पहाड़ लगभग बोलता हुआ प्रतीत होने लगता है। खासकर लोक साहित्य और लोक शैली की विशेषताओं को रचा बसा कर मटियानी जी भाषा में वह अद्भुत लचक और जिंदादिली पैदा करते हैं जिससे मामूली से मामूली प्रसंग भी अर्थवान हो उठता है। एक बात ध्यान देने की है कि मटियानी को विचार और आधुनिकता से कतई दिक्कत नहीं है, लेकिन उन्हें रस मिलता है तो वह केवल-लोक संस्कृति में। उनकी कहानियों को पढ़ते हुए लगा जैसे-पहाड़ की सांस्कृतिक विरासत उनके भीतर सांस ले रही हो, उनके भीतर जिंदा हो और पल्लवित पुष्पित कर वह उसे एक विशाल वृक्ष बनाना चाहते हो, एक गहरा समुंदर हो जैसे। और बार-बार वह उस महासागर में डूबकी लगाकर तरोताजा होते हैं। अपनी कहानियों में वह अतीत वर्तमान और भविष्य तीनों छोरों के ऊपर नजर गड़ाए मिलते हैं। लेकिन टिकते वे अंततः वर्तमान पर ही हैं। वह न तो भविष्यवादी और न अतीतजीवी होना चाहते हैं। कुल मिलाकर उनका उत्कट लगाव मामूली से मामूली आदमी के साथ है। उसकी मामूली चिंताओं और मामूली तकलीफों के साथ है। यही उनकी मुश्किल है और यही उनकी मुश्किलों का हल भी।

मटियानी जी ने पर्वतीय समाज के यथार्थ, उसके संघर्ष की मर्मांतक सच्चाइयों को जितने पास से देखा-जाना है और उनके प्रामाणिक चित्र उनकी कहानियों में मिलते हैं, वैसा रचनात्मक साहस कोई और नहीं दिखा पाया। शैलेश से पहले पहाड़ साहित्य में सौंदर्य की विभिन्न छवियों तथा बिंबों के रूप में आता था। बल्कि इलाचंद जोशी जैसे बड़े लेखक पहाड़ की

पृष्ठभूमि को अपने लेखन कर्म के लिए अनुर्वर मानते थे। शैलेश ने पहली बार पहाड़ के मनुष्य की जीवन गाथा को पूरी व्यापकता के साथ हिंदी के पाठकों के सम्मुख रखा। केवल पहाड़ की खूबसूरती को ही नहीं उन्होंने अपनी रचनात्मकता का आधार बनाया बल्कि इन खूबसूरत पहाड़ों में सूखे चट्टाननुमा संघर्षरत लोगों के जीवन को उन्होंने देखा और अपने साहित्य में जगह दी। मटियानी जी पहाड़ के प्रत्येक पक्ष को इतनी भली-भांति देखा है मानो पूरा का पूरा पहाड़ उनके भीतर बस गया हो और वे उसमे रम गए हो!

शैलेश मटियानी के कथा-साहित्य का अपना एक अलग ऐतिहासिक महत्व है। इनके कथा साहित्य में पहाड़ का सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन ही नहीं वहाँ का इतिहास, भूगोल या कहे सब कुछ दर्ज है। इनकी सैकड़ों कहानियाँ पहाड़ के सामाजिक जीवन से संबंधित है, जो पहाड़ के जीवन संघर्ष के जीवंत दस्तावेज है। अगर आप पहाड़ के पिछले कई वर्षों के जीवन यथार्थ और संस्कृति से रूबरू होना चाहेंगे तो, आपको शैलेश मटियानी के कथा साहित्य की शरण में ही जाना पड़ेगा। इनके इस योगदान के चलते हैं इनको पर्वत का सांस्कृतिक पुरुष कहना ही उचित होगा। मटियानी की कहानियों में तत्कालीन आर्थिक सामाजिक राजनीतिक धार्मिक वातावरण अपनी समस्त विधाओं के साथ प्रस्तुत है। मटियानी मानते थे कि समाज में अर्थ का विशेष महत्व है लेकिन समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता को इन्होंने लोक जीवन के लिए घातक बतलाया है। शैलेश मटियानी ऐसे कथाकार है जिन्होंने पर्वतीय समाज में प्रत्येक वर्ग के जीवन संघर्ष का अत्यधिक नजदीकी से गहन अध्ययन किया है। इस संघर्ष को उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से समाप्त करने की कोशिश भी की है लेकिन वह कहाँ तक सफल हो पाए यह कहना असंभव है।

पहाड़ में जन्मे लेखकों के अनुभव भी अक्सर पहाड़ तक ही सीमित रह जाते हैं, लेकिन शैलेश मटियानी इन अनुभवों का विस्तार करते हैं। इनका जीवन और लेखन दोनों ही विविधताओं से भरा हुआ है, जो किसी भी साहित्यकार के लिए कठिनाई की बात हो सकती है।

इन की कहानियाँ कल्पना पर आधारित न होकर जीवन की सच्चाई से जुड़ी हुई है। शैलेश मटियानी की कहानियों की प्रमुख विशेषता यह है कि इनमें समाज के उस यथार्थ का चित्रण है, जिसे उन्होंने स्वयं देखा। समाज के यथार्थ को अपनी रचनाओं में अंकित कर पाठक के समक्ष लाने की कोशिश की गई है, ताकि पाठक पढ़कर उस दर्द को महसूस करे। उन्होंने पहाड़ के हर व्यक्ति के उस दर्द को महसूस किया जिसे उन्होंने स्वयं कभी जिया था या यूँ कहे जीते ही आ रहे थे। पर्वत का निवासी एक अलग समाज में जीवन जीता है उसका रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान ही नहीं अपितु इसका आचरण और व्यवहार भी इसे अन्य क्षेत्र के लोगों से अलग करता है। यहाँ की धरती के भौगोलिक स्वरूप में अत्यधिक भिन्नता के कारण स्वयं पर्वतीय व्यक्ति के सामाजिक रीति-नीतियों में अंतर दिखाई देता है। शैलेश की कहानियों में वहां की सामाजिक स्थिति पूर्ण रूप से दिखाई देती है। क्योंकि इन्होंने अपनी रचनाओं को जहां पर लिखा है वहां की सामाजिक स्थिति का यथार्थ पूर्ण रूप से चित्रित किया है। जैसे, कुमाऊँ में लिखी गई कहानियाँ वहाँ की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पृष्ठभूमि पर आधरित हैं, और मुंबई में लिखी गई रचना वहाँ के समाज स्थिति पर आधारित है। शैलेश मटियानी हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण रचनाकार है इनका साहित्य भारतीय जन जीवन उसमें भी पहाड़ का जीवन एवं उनकी भावनाओं का साक्षात प्रतिरूप है। व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ मटियानी के कथा साहित्य में मुखरित होती है। शैलेश मटियानी ने अपने व्यक्तिगत जीवन में भी संघर्ष का ही रास्ता चुना और यही संघर्ष इनके कहानियों एवं उपन्यासों में मिलता है।

हिंदी कथा साहित्य में सन् 1950 ई. के आसपास आंचलिक कथाकार के रूप में मटियानी ने अल्मोड़ा के भू-भाग को अपनी कथा भूमि के रूप में चुना और वहां के जन-जीवन के विभिन्न रूपों को बड़े ही प्रभावशाली ढंग से अपनी रचनाशैली में चित्रित किया। शैलेश की पहचान सिर्फ आंचलिक कथाकार के रूप में ही नहीं बल्कि एक सामाजिक यथार्थवादी तथा आदर्शोंन्मुख

कथाकार के रूप में भी देखने को मिलती है पर्वतीय अंचल को कथा भूमि के रूप में रखकर उन्हें सामान्य जनजीवन से जुड़े अनेक अकथनीय विचारों को बड़ी सहजता से प्रस्तुत किया है। शैलेश मटियानी पहाड़ी अंचल का परंपरागत एवं वर्तमान सांस्कृतिक विधियों का सर्वोत्कृष्ट चित्रण करते हैं। ग्रामीण मनोविज्ञान का पूर्ण ध्यान रखते हुए ग्रामीण संस्कृति के विविध पहलुओं को लेखक ने छुआ है। गांव में प्रचलित उन रीति-रिवाजों, उन अपशगुनों को जो ग्रामीण समाज के लिए हितकर नहीं है उन्हें त्याग देने का आह्वान किया है। कुमाऊंनी संस्कृति भारतीय संस्कृति की एक क्षेत्रीय संस्कृति है जो अपनी विशेषताओं के कारण अलग पहचान रखती है।

धार्मिक चेतना की विभिन्न अभिव्यक्ति शैलेश की कथा साहित्य में देखी जा सकती है। शैलेश मटियानी धार्मिक वातावरण में पले-बढ़े उन्होंने बाल्यकाल से धार्मिक कर्मकांड और पूजा विधान को देखा। साधु -महंतो का पाखंड, अंधविश्वासों को धार्मिक आस्थाओं के नाम पर भूत-प्रेत, टोने-टोटके व मनौतियों आदि विधानों को प्रकट किया है। स्थानीय देवी-देवताओं पर मटियानी को अटूट आस्था थी। मटियानी का मानना है कि मर्यादा और अध्यात्म के लिए धर्म की शरण में जाने वाले पोंगा-पंथियों ने ही इस देश को अकर्मण्य बना दिया है। मटियानी ने ढोंगी पाखंडियों की पोल खोलकर वास्तव में पर्वतीय लोगों की आँखे खोल दी।

मटियानी ने पर्वतीय अंचल से संबंधित कहानियों में नारी जीवन की अनेक विषमताओं को भी उभारा हैं। नारी को जीवन में अर्थ के अभाव में सदैव घुटन भरा जीवन जीते हुए दिखाया गया है। आर्थिक संघर्षो से जूझते हुए परिवार के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करती है। इस प्रकार पहाड़ी अंचल पर आधारित कहानियों में उन्होंने पहाड़ी जीवन के आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक परिवेश में स्त्री शोषण का चित्रण किया है।

अतः हम कह सकते हैं कि कुमाऊँ के पर्वतीय क्षेत्र का प्राकृतिक सौंदर्य तथा लोकजीवन शैलेश मटियानी की कहानियों में जीवंत हो उठा है। उनके कथा-पात्र कुमाऊँ की स्थानीयता में रचे बसे होने पर भी आंचलिकता के रूढ़ मीमांतों में सिमटे हुए नहीं हैं। उनके संघर्ष और जिजीविषा के

व्यापक आयाम हैं, जो समय और भूगोल का अतिक्रमण करते हैं। उनकी कहानियाँ उनके जीवन की संघर्ष गाथा है, उनमें जीवन की वास्तविकता प्रगाढ़ रूप में उपस्थित है। उनके पात्र संवेदनशील और संघर्षशील दोनों हैं।

शैलेश मटियानी के योगदान को देखते हुये गिरिराज किशोर ने लिखा है "मैं नहीं समझता कि हिन्दी साहित्य मटियानी जी को नजर अंदाज करके अपने साहित्य का सही मूल्यांकन कर पाएगा।" [104] निश्चय ही आज के विमर्शों में मटियानी जी का मूल्यांकन सही ढंग से हो सके इसके लिए हम सभी को ध्यान देने की आवश्यकता हैं।

---

[104] कैलाशचंद्र पंत, सृजन यात्रा-तीन(गिरिराज किशोर),श्री शैलेश मटियानी, मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भोपाल-2002, पृष्ठ-20

आधार-सामग्री

आधार सामग्री

दो दुखों का एक सुख

गोपुली गफूरन

सुहागिनी

अर्द्धांगिनी

अहिंसा

रहमतुल्ला

रुका हुआ रास्ता

जिबुका

सफर पर जाने से पहले

असुविधा

नदी किनारे का गाँव

मिट्टी

सुगंध

भेड़ें और गडरिये

मैमूद

सहायक ग्रंथ-सूची

1. मेरी तैंतीस कहानियाँ, शैलेश मटियानी, आत्माराम एंड संस,दिल्ली
2. शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियाँ भाग-1, संपादक-राकेश मटियानी,प्रकल्प प्रकाशन, मोती लाल नेहरू नगर,प्रयागराज-211002,द्वितीय संस्करण:2008
3. शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियाँ भाग-2, संपादक-राकेश मटियानी,प्रकल्प प्रकाशन, मोती लाल नेहरू नगर,प्रयागराज-211002,द्वितीय संस्करण:2008
4. शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियाँ भाग-3, संपादक-राकेश मटियानी,प्रकल्प प्रकाशन, मोती लाल नेहरू नगर,प्रयागराज-211002,द्वितीय संस्करण:2008
5. शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियाँ भाग-4, संपादक-राकेश मटियानी,प्रकल्प प्रकाशन, मोती लाल नेहरू नगर,प्रयागराज-211002,द्वितीय संस्करण:2008
6. शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियाँ भाग-5, संपादक-राकेश मटियानी,प्रकल्प प्रकाशन, मोती लाल नेहरू नगर,प्रयागराज-211002,द्वितीय संस्करण:2008
7. मेरी प्रिय कहानियाँ, शैलेश मटियानी,राजपाल एंड संस, दिल्ली
8. कुमाऊँ की लोककथाएँ, हरीसुमन बिष्ट,
9. शैलेश मटियानी के उपन्यास, परिवेश और रचना-संदर्भ, हेमंत सोनाले, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-2014,
10. शैलेश मटियानी व्यक्तित्व और कृतित्व, उर्बीशचन्द्र मिश्र, साहित्य भंडार, इलाहबाद, प्रथम संस्करण-1999
11. जन कथाकार शैलेश मटियानी, प्रकाशन विभाग, निदेशक, प्रकाशक विभाग, सूचना और प्रशरण मंत्रालय, भारत सरकार पटियाला हाउस, नई दिल्ली
12. चिट्ठीरसैन (शैलेश मटियानी), आत्माराम ऐंड संस दिल्ली, प्रथम संस्करण

13.मक्सिम गोर्की:जनता के बीच,अनुवादक-नरोत्तम नागर, विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, प्रथम संस्करण

14.मटियानी की कहानियाँ : जख्मों की पहचान, गिरिराज किशोर

15.दस प्रतिनिधि कहानियाँ, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली

16.दो दुखों का एक सुख, शैलेश मटियानी, आत्माराम एंड संस

17.शैलेश मटियानी की प्रतिनिधि कहानियाँ, संपादक-बटरोही,

18.भेड़े तथा गडरिए, शैलेश मटियानी, प्रकल्पप्रकाशन, हल्द्वानी

19.हिन्दी का गद्य साहित्य, डॉ०रामचंद्रा तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी एकादश संस्करण : 2016,

20.कुमाऊँ लोक थात, भावना पांडेय,उत्तराखंड संस्कृत विभाग

21.कैलाशचंद्र पंत, सृजन यात्रा-तीन(गिरिराज किशोर),श्री शैलेश मटियानी, मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भोपाल-2002,

22.धरती की पुकार, सुंदरलाल बहुगुणा, राधाकृष्ण प्रकाशन,

23.उत्तराखंड की लोक एवं पर्यवारण गाथाएँ, प्रभात कुमार उप्रेती, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2013

पत्र-पत्रिकाएँ

1. पहाड़ पत्रिका:हिमालयी समाज, संस्कृति, इतिहास तथा पर्यावरण पर केन्द्रित (शैलेश मटियानी के मायने), 2002
2. आज का पहाड़, श्री बद्री दत्त कसनियाल, पिथौरागढ़
3. पहरू, श्री हयात सिंह रावत, अल्मोड़ा